प्रकाशक :—
विप्लव कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक·
साथी प्रेस
लखनऊ

समर्पण

बुद्धि बल यद्यपि बहुतेरा,
मन में छाया घोर अँधेरा—
तू मन की आँखें खोल,
ले तर्क तराजू तोल,....
बाबा, मन की आँखें खोल !

यशपाल

विषय सूची



चक्कर क्लब

परिचय:—

अपने कुछ मित्रों को क्लब का बहुत शौक़ है। घास की हजामत कर संवारे हुए टैनिस के लानों से घिरे कई क्लबों में, जहाँ कांच की खिड़कियां और झिलमिल परदों की ओट में मेज़ों पर सजे बिल्लौर और चांदी के बर्तन दिखाई देते हैं, जहां बढ़िया सिगरेटों और सिगारों के धुएँ से आरती उतारी जाती है, जहाँ से कहकहों और किलकारियों की दबी-दबी आवाजें आती हैं उन्होंने झांक कर देखा है परन्तु बरामदों में खड़े, सफ़ेद चोगों पर लाल पेटी बांधे चपरासियों के भय से उनकी वहां पहुंच हो नहीं सकती। जैसे पत्तल पर चील के जा बैठने से कौवे दूर ही दूर मंडराकर कांय-कांय करते हैं, ठीक वैसे ही अपनी भी अवस्था है परन्तु आवश्यकता और इच्छा तो अनुभव होती है। हाथ पैर के असमर्थ होने पर भी जुबान तो चल सकती है। कविता से प्राप्त होने वाले सांसारिक आनन्द की भांति अपने साथी भी कह-सुनकर ही मन की तृष्णा पूर्ण करने का यत्न करते हैं। मकान के लिये किराया और फर्नीचर के लिए पैसा नहीं ; अपना सत्संग हो तो कहां ? निश्चय हुआ कि घूम-फिर कर दिल बहलाया जाय, जगह-जगह का रस लिया जाय और अपने क्लब का नाम रहे—'चक्कर-क्लब।'

हाथ में कुछ साधन न होने पर भी चक्कर-क्लब का प्रत्येक मेम्बर तीस-मार खां है। उन्हें विश्वास है कि उनकी प्रत्येक बात अमूल्य है। उनकी बातों पर समाज आज भले ही खीसें निकाल कर हँस दे परन्तु कल उनकी कदर होगी। सम्भव है, वे बातें 'प्रमाण' के तौर पर काम आयें। उस समय उनके वचनों के सम्बन्ध में शंका और विवाद न हो; जैसा आज शास्त्रों के सम्बन्ध में होता है कि कौन वचन प्रक्षिप्त (बाद में मिला दिया गया) और कौन मूल है इसलिये इन्हें छपवा देने का प्रबन्ध किया गया है। चक्कर-क्लब की इन बातों को छापने का साहस किया केवल 'विप्लव' ने। परन्तु चक्कर-क्लब के भाग्य से 'विप्लव' सरकार के कोप का पात्र बन गया। विप्लव के बन्द हो

जाने पर चक्कर-क्लब ने अपनी जान बचाने के लिए 'विप्लवी-ट्रैक्ट' में 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' का भेस धारण किया। बाना तो बदला परन्तु बान न बदली। विप्लवी ट्रैक्ट भी इस अग्नि को पचा न सका और वह भी मारा गया। सो सत्य की पुकार को जीवित रखने के लिये इसे ग्रंथ रूप धारण करना पड़ा।

चक्कर-क्लब के लिये 'बेकार एण्ड कम्पनी' नाम उसके गुण के अनुरूप ही है। बेकार कहलाने में मेम्बरों का तिरस्कार नहीं बल्कि गौरव है। बेकार से अभिप्राय-अपदार्थ, फिजूल या निकम्मा आदमी नहीं। यह नहीं कि जो कोई चाहे खाली हाथ हिलाता और जम्हाई लेता आकर बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड या चक्कर क्लब में आ बैठे। चार आना सलाना चन्दा देकर भी इसमें जो चाहे भरती नहीं हो सकता। चक्कर-क्लब में 'बेकार' शब्द का अर्थ है:— (क) ऐसे लोग जो यत्न करने पर भी निर्वाह के लिए कारोबार नहीं पा सकते। बेकार की वास्तविक परिभाषा यह है कि वह समाज की मौजूदा हालत से परेशान हो और उसे बदलने की इच्छा और यत्न करे। ऐसे राजनैतिक और सामजिक कार्यकर्त्ता ही 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' 'चक्कर-क्लब' के मेम्बर हो सकेंगे जो काकवृत्ति से यानी कौवे की तरह छीन-झपट कर अपना निर्वाह चलाते हैं और सदा क्रान्ति के लिये कांय-कांय किया करते हैं। जो लोग घर में काफी मालमता होने के कारण कोई काम करने की जरूरत नहीं समझते, 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' के मेम्बर नहीं बन सकते। उदाहरणतः इस देश की बड़ी-बड़ी रियासतों के मालिक बेकार फिरा करते हैं या सेठ जी भी दुपहर के समय भोजन करने के बाद कुछ देर बेकार में सुस्ताते हैं। यह लोग बेकार नहीं गिने जायेंगे और न 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' के मेम्बर बनने के हक़दार होंगे।

(ख) बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड या चक्कर-क्लब के सदस्य दो प्रकार के होंगे। एक सम्मानित बेकार; जिन्हें निर्वाह के लिये कोई रोजगार मिल ही नहीं पाता। समाज ने मौजूदा व्यवस्था पर शहीद होने के लिये उन्हें चुना है। उन्हें मजबूर होकर समाज की मौजूदा व्यवस्था को बदलने की चेष्टा करनी ही होगी। यों तो सम्पूर्ण समाज दुखी और शंकित है परन्तु जिनका दुःख फिल-हाल सहा जा सकने योग्य है, वे कुछ समय या कुछ पीढ़ियों तक उसमें सड़-

गल सकते हैं। परन्तु जिनके जिए मौजूदा समाज में जीवित रह सकने का कोई अवसर है ही नहीं, वे समाज की अवस्था में परिवर्तन करने के लिए यत्न क्यों न करें?....उन्हें इसमें कौन जोखिम? कोई उनसे क्या छीन लेगा? डुबकी लगाने में उन्हें डर क्या? उन्हें कुछ निचोड़ना नहीं पड़ेगा? इनसे वीरता और साहस की आशा कर क्लब इन्हें सम्मान के योग्य समझता है।

(ग) सम्मानित या विश्वस्त बेकारों के अलावा क्लब में 'एण्ड कम्पनी' या सहायक लोग भी सम्मिलित हो सकते हैं। एण्ड कम्पनी या सहायक लोग उन्हें समझा जायगा जो शुद्ध अर्थ में तो बेकार नहीं परन्तु अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं पा सकते या जिन्हें अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार परिश्रम करने और उसका फल पाने का अवसर नहीं। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय कि जिनकी आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं और जिन्हें तरक्की का अवसर नहीं? उदाहरणतः ऐसे कारोबारी जो बड़े रोजगारियों के मुकाबिले अपना कारोबार नहीं चला सकते या ऐसे नौकर लोग, जिन्हें सदा ही बेकार बन जाने का भय बना रहता है। इस श्रेणी में दफ्तरों में काम करने वाले क़लम-मज़दूर या कारखानों में काम करने वाले वे सब मज़दूर शामिल हैं जिनकी नौकरी की ओर दफ्तरों और कारखानों के बाहर बेकारी से परेशान खड़े लोग भूखी-नज़र लगाये रहते हैं और आधा पेट मजदूरी लेकर भी इन बेचारों की नौकरी झपट लेने को तैयार रहते हैं।

(घ) वे किसान जो पर्याप्त भूमि न होने के कारण या भूमि से की गई पैदावार अनेक उपायों से भूमि के मालिक के पेट में चले जाने के कारण परेशान रहते हैं। किसानों की ऐसी सन्तान जो अपनी पैत्रिक (औरस) भूमि के अनेक भाइयों में बँट जाने और भूखे मरने की आशंका से व्याकुल हैं, बेकारों की 'एण्ड कम्पनी' या सहायकों में शामिल हो सकते हैं।

(ङ) जेल जाने के आदी सत्याग्रही, जिन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन से केवल इतना सम्पर्क है कि वे सदा जेल जाने के लिए तैयार रहते हैं—क्योंकि जेल में न रहने के समय वे बेकार (यहाँ बेकार शब्द का अर्थ 'निकम्मा' है) ही रहते हैं—भी सहायक सदस्य समझे जा सकते हैं।

(च) साधु-सन्त, चन्दाग्राही और भिखमंगे लोग, जो भीख मांगकर बदले में दुआ और आशीर्वाद दे देते हैं, बेकार नहीं समझे जायंगे। उनको

रोज़ी है, खाते-पीते लोगों को पुण्य करने का अवसर देकर उनके लिए स्वर्ग पहुंचने का प्रवन्ध करना। ऐसे लोग समाज की मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन लाने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते। स्त्रियों की समस्या अलबत्ता कुछ टेढ़ी है। समाज के लिये पैदावार करने के दृष्टिकोण से इस देश की *सभी स्त्रियां प्रायः बेकार रहती हैं। निर्वाह के लिए नौकरी मजदूरी वे नहीं* ढूंढ़तीं। उन्हें उसकी जरूरत भी महसूस नहीं होती। क्लब का फैसला है कि उन्हें बेकार नहीं समझा जा सकता। क्योंकि वे सब वास्तव में घरेलू नौकर हैं। रोटी, कपड़े और जेवर पर वे घर सम्हालने और बच्चे पैदा करने का काम करती हैं। वे न बेरोजगार हैं और न बेचैन हैं।

स्त्रियों के लिए संस्कृत साहित्य में 'वामा' शब्द आया है। अर्थात वे उल्टे चलती हैं। मौजूदा सामाजिक स्थिति में उनका तर्ज़ बिलकुल उल्टा है। ग़रीब श्रेणी की स्त्रियां जिन्हें घर के भीतर या बाहर मेहनत मजदूरी करनी पड़ती है और जिन पर पड़ती है मार; भारत की सब से अधिक शोषित और दलित श्रेणी किसानों और मजदूरों की भांति बेजुबान और चुप हैं। मध्यवर्ग तथा ऊँचे वर्ग की स्त्रियां जिन्हें घर में या बाहर कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती और जिनकी नाजबरदारी के लिये उनके मर्द मदारी के रीछ की तरह नाचा करते हैं, दिल बहलावे के लिये स्वतंत्रता और समानता की मांग का प्रस्ताव पास करती रहती हैं। इनकी स्वतंत्रता का नुसखा है—पति की छत्र-छाया बनी रहे, सिर पर जिम्मेदारी कोई न हो और स्वच्छन्दता पर्याप्त रहे।

(छ) स्त्रियों की मेम्बरी बेकार मैं और एण्ड कम्पनी वा सहायकों में बिलकुल ही मना नहीं है परन्तु केवल वही स्त्रियां इसमें सम्मिलित हो सकती हैं जो असंतुष्ट है। असंतुष्ट शब्द का सही अर्थ समझ लेना आवश्यक है। ज़ेवर काफ़ी न मिलना या सन्तान न होना असंतोष का मुनासिब कारण नहीं समझा जायगा। स्त्रियों के लिये असंतोष के मुनासिब कारण यह हो सकते हैं, मन माफिक पति न मिल सकने के कारण अपना जीवन निरर्थक समझ रही हों या आयु काफ़ी हो जाने पर भी कहीं पत्नी की नौकरी न मिल सके।

उद्देश्य और साधन

चक्कर-क्लब के संगठन का उद्देश्य है—अपनी समस्या को समझना। दिल का गुबार निकालना। चक्कर-क्लब में किसी भी विषय पर विचार हो सकता

है । राजनीति, समाज, सहित्य, नाच-गान कोई भी विषय, जिसका मनुष्य के जीवन से सम्बन्ध हो, चक्कर-क्लब के विचाराधीन है । इस रूप में बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड, अनलिमिटेड या असीम है परन्तु पैसे-धेले के मामले में नितान्त लिमिटेड या सीमित है ।

विशेष कारण

यों तो सम्पूर्ण देश, जाति या राष्ट्र से ही बसा हुआ है परन्तु यह सम्भव नहीं कि उंगली उठाकर बता दिया जाय कि जाति या राष्ट्र कौन और कहां है । इसी प्रकार यह बता देना कि चक्कर-क्लब या बेकार एण्ड कम्पनी कौन और कहां है, कठिन है । जिस प्रकार राष्ट्र या जाति की भावना व्यापक और सत्य है उसी प्रकार चक्कर-क्लब की भावना भी । यह भावना है, असंतोष को पाप न समझ उसे प्रकट करने और असंतोष के कारणों को खोजकर उनका उपाय करने की । चक्कर-क्लब की विशेषता है कि समस्याओं को व्यक्तिगत रूप में सीमित न रख कर उन्हें सामाजिक रूप देने की प्रवृति । शास्त्र में कहा है, 'कलौ शक्ति संघे' अर्थात कलियुग में शक्ति—संगठन और सामाजिक भावना में ही हो सकती है । इसलिये बातवीर, असंतुष्ट बेकार वीरों का यह हवाई संगठन 'चक्कर-क्लब' और 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' के रूप में प्रकट हुआ है ।



साहित्य, कला और प्रेम ?

भारत के प्राचीन कवियों ने वर्षा ऋतु का जैसा बखान किया है, उस सब से सहमत हो सकना चक्कर क्लब के सदस्यों के लिये कठिन है। वह समय और था, वे आदमी और थे; वे गये, उनका समय गया।

आज प्रशस्त विशाल प्रासादों में गवाक्ष से आती हुई वर्षा की महीन-महीन फुहार, सामने क्षीणकटि, कसी हुई अंगिया में जोवन दबाये, मेंहदी से चित्रित दो ऊंगलियों से घूंघट का कोना उठा, कान तक फैले नयनों में मुस्कराहट भर, बाण छोड़ती हुई नायिका कहां हैं; जो मेघों की गर्जना से भयभीत हो नायक से लिपट जाती थीं ? और कहां हैं अब वे ग्राम-वधुएँ, जो उमड़ते-घुमड़ते, ऊदे-ऊदे बदरा की ओर अपने कजरे नयना फैला साजन की याद में बेसुध हो जाती थीं ? साजन के लौट आने से पहले ही बूंदों से चूनरी का चोखा रंग फीका पड़ने पर जो हाथ उठा बादल का श्राप देती थीं ? जिनके सरस नयनों से नगर की अट्टालिका और ग्राम के पनघट पर रस बरसता था ?

और आज ? ······ आज तो वे जार्जेट की 'डलशेड'* साड़ी पहन, कालिज की लारी में बैठ, साजन समूह पर बहुत-सी धूल और उड़ती-उड़ती नज़र डालती हुई वहां जा छिपती हैं, जहां लोहे के सींखचे जड़े फाटक पर लिखा रहता है—"बगैर इजाजत भीतर जाना मना है।" गागर की जगह उनकी बग़ल में दबी रहती है छतरी। रुनुन-झुनुन करने वाले पायजेब की जगह जिनके पैरों से आती है, ऊँची एड़ी की खट-खट की आवाज़। वह ऊँची एड़ी, जिसे बेंध

* जिस रंग में भड़क न हो।

कर कोई भाग्यशाली कांटा उनकी महावर रंगी एड़ी को चूम नहीं सकता और किसी भाग्यशाली देवर को वह एड़ी छू पाने का अवसर नहीं।

आज वर्षा की प्रतीक्षा रस राग के लिये नहीं की जाती। कंकाल देह किसान मेघों की ओर शंकित दृष्टि दौड़ाता है, इस आशंका से कि फसल न होने पर लगान कहां से दिया जायगा और पुरवासी (नागरिक) मेघों की प्रतीक्षा करते हैं लू से झुलसे शरीर पर फूली हुई घाम के कारण फूटने वाली चिनगों से छटपटाते, बन्द कोठरी में पसीने से गलते और दम घुटते हुए शरीर के लिये शीतल वायु का झोंका पा सकने की आशा में......और आज पावस की क्रीड़ा होती है, बेसमय बरसते मेघों को उलाहना देने में। भीगते कपड़ों से गली के कीचड़ में फिसलते-फिसलते बाबुओं के दफ्तर पहुँचने में। जहां देर से पहुँचने के कारण साहब की घुड़की और जुर्माना, घर लौटते समय पर्याप्त सौदा न ले आ सकने से घरवाली का तिरस्कार उनकी प्रतीक्षा करता है। आज पावस की क्रीड़ा होती है, वर्षा में भाग-भागकर चुचुआती छत पर मिट्टी डालने जाने में और टपके के नीचे घड़े के ठीकरे सजाने में।

वर्षा ऋतु की निरंतर वर्षा में दो जीवों के बुरे दिन आ जाते हैं। एक धोबी के गधे के जिसे सिर भर छिपाने की जगह भी नहीं मिलती और दूसरे चक्कर-क्लब के शौकीन तबीयत पर साधन-हीन मेम्बरों के; जिन्हें कोई स्थान नहीं मिलता, जहां चार जने मिल बक-झक कर दिल की भड़ास निकल सकें।

जाने क्या सोच कर पानी तीन दिन से बरसे ही जा रहा था। किसी पार्क की घास पर या सड़क पर चक्कर-क्लब का सत्संग हो सकना सम्भव न था इसलिये उस रविवार की दोपहर को चक्कर-क्लब के सज्जनों के सबर का बांध टूट गया। क्लब के एक भलेमानुस सहायक मेम्बर के घर, बराम्दे में ही उन्हें एकत्र होना पड़ा।

यह सज्जन भलेमानुस इसलिये हैं कि इनके यहां एक पुराना तख्त है और कुछ मोढ़े पड़े रहते हैं। मेहमानों के सम्मान के विचार से गृहपति ने किसी-न-किसी तरह तेल में छुंकी घुघुनी का प्रबन्ध किया। बिना दांव के ताश खेलने की भी तजवीज की गई परन्तु उसमें किसी का मन न लगा।

एक सज्जन को शायद बरस भर से बिछुड़ी अपनी युवती पत्नी की याद

ने सताया। अपने घुटनों का आलिंगन कर कुछ विस्मृति के से भाव में उनके मुख से निकल गया—"आज जो घर पर होते······?"

उनकी इस दर्द भरी कराहट को सुन उन की बग़ल में बैठे सज्जन ने किलकारी भरकर कहा—"वाहरे पट्ठे·······आज जो घर पर होते············। हाँ-हाँ, आज जो घर पर होते············!" दो तीन दफ़े वे दोहरा गये और फिर स्वयं ही उनकी आँखें भी किसी कल्पना या स्मृति की ओर चली गईं। कुछ खोये से बैठे रहे।

इनकी बात को उठाया तीसरे सज्जन ने, "आज जो घर पर होते" शब्दों को तौल कर वे बोले - "आज ·· जो···घर···पर होते ?······ समस्या पूर्ति की जाय ?"

समस्या पूर्ति की कोशिश की गई। किसी ने कहा,—"आयरे घने-घने वदरवा, सजनी सूनी परी सेजवा।" और आगे न कह सके। किसी ने कहा, "मन मोरा तरफ़े नन्हीं-नन्हीं बुंदियाँ·······" और रह गये।

मकान नामधारी कच्ची ईंटों के इस चौखटे के सामने, जहाँ तख्त पर चक्कर-क्लव का सत्संग जम रहा था, जरा दाईं ओर एक भव्य मकान है। दो मंजिल का, नये ढंग का, नया मकान सीमेण्ट से पुता हुआ। ऊंचा कुर्सीदार उसका नीचे का वरामदा लाल रंग की टाइल से मढ़ा है। वरामदे की सीमेण्ट की वनी वन्नी से गमलों में लटकने वाली वेलें लटक रही हैं। भीतर के कमरे की खिड़कियाँ वरामदे में खुलती हैं। खिड़कियों पर रेशमी जाली के परदे पड़े हैं सही, परन्तु वर्षा के कारण होने वाले अंधेरे का उपाय करने के लिये भीतर जो विजली का तेज वल्ब जलाया गया था, उस से सब कुछ दिखाई दे रहा था।

यह कमरा वह था जिसे भले आदमियों के यहाँ ड्राइंग रूम या वैठक कहा जाता है। दीवारें थीं हल्के नीले रंग में पुती हुईं। उन पर कांच मढ़े वड़े-वड़े फ्रेमों में चित्र लटक रहे थे:—यमुना तीर पर चीरहरण, प्रसिद्ध सिनेमा नटी क्लारा वो, नर्तकी ह्वाइटरोज़, नृत्यरता मेनका और नील-वर्ण कृष्ण के गले में गोरी वांह डाले, वंशी की शिक्षा प्राप्त करती हुई राधिका। नीचे तीन-चार छोटे फ्रेमों में योरूपियन चित्रों की प्रतिछाप थी। अँगीठी की कानस पर विछी जाली की झालर पर विलायती उर्वशी (वेनिस) और रम्भा

(डायना) की हाथ-हाथ भर क़द की नग्न मूर्तियां विस्मय की मुद्रा में खड़ी देखने वालों को विस्मित कर रहीं थीं। फ़र्श पर बिछा था नीला कालीन ! कमरे के एक कोने में रखा था रेडियो, जो दुपहर के प्रोग्राम में गा रहा था—"मोरे अँगना में आये आली, मैं चाल चलूं मतवाली.......। चोली पै नजरिया जाय, मोरी चुनरी लिपट मोसे जाय..........।"

रेडियो के समीप खड़ी थी, प्याज की गांठ की तरह अनेक छिलकों में लिपटकर रहने वाली एक युवती। आयु के विचार से वे युवती थीं परन्तु घर की सहूलियत के विचार से लड़की। उनकी साड़ी का भड़कीला लाल किनारा कमर से ऊपर और नीचे के पुष्ट भागों की ओर संकेत कर रहा था। उनके एक हाथ में था 'सारंग'*। रेडियो की टेविल पर उनके दायें हाथ की उँगलियां और कालीन पर दांये पैर की चप्पल ताल दे रही थी। वायें पैर पर बोझ दिये उनका शरीर डोल रहा था। दूसरे कोने में ढलती आयु के एक भलेमानुस सुबह का अखबार देख रहे थे।

क्लब के लोग घुघनी चबाते हुए उड़ती-उड़ती नजर उस ओर फेंक लेते थे। क्लब में सन्नाटा था क्योंकि क्लब के इतिहासज्ञ कहाने वाले सब से बड़-बोले मेम्बर सतृष्ण आँखों से खिड़की की राह उस ओर टकटकी लगाये थे। गृहपति ने उन्हें उस ओर घूर-घूर कर न देखते रहने के लिए कहा परन्तु उत्तर मिला—"हम किसी का कुछ छीन लेते हैं क्या ? देखना भी मना है ? जिसे पा नहीं सकते उसे देख ही लेने दो ! कविता पढ़कर जैसे रस मिलता है, वैसे ही देखने में भी सुख होता है। इसे दृश्य काव्य ही कह लीजिये ! और फिर हम निष्काम भाव, दार्शनिक रुप से देख रहे है, इस में हर्ज ?"

उसी समय एक मेम्बर को जाने क्या सूझी कि वे गाने लगे—"जारी वदरिया जा, तू साजन का संदेशा ला !"

गृहपति ने घवराकर कहा—"भाई दार्शनिक ! क्यों फजीहत कराना चाहते हो, जानते हो यहां सव इज्जतदार बड़े आदमी रहते हैं........"

साहित्यिक ने विगड़ कर ऊँचे स्वर में कहा—"हम किस से कम इज्जत-दार हैं जी ?"

---

* रेडियो के प्रोग्राम का पत्र

इनकी सहायता में बोल उठे दार्शनिक—"हम साजन को संदेशा भेजने की बात करें तो बेहयायी और दूसरे आंचल पकड़कर खींच लें और हंस-हंस कर झगड़ें, चोली दवायें तो कुछ चर्चा नहीं"···"हम जिक्र भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम, वो कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।"

सहसा सामने के मकान में बरामदे के सुन्दर लाल फर्श पर कालिख और कीचड़ से भरा एक जूता छप से आ गिरा।

खिड़की के समीप बैठ अखबार पढ़ने वाले प्रौढ़ पुरुष हाथ में अखबार थामे बरामदे में निकल आये। गरज कर उन्होंने कहा—"यह क्या छिनालपन है?" पल भर में उनका क्रोध और तीखा स्वर चरम सीमा पर पहुंच गया—"हरामजादे कहीं के, मजाक करते हैं, रसिया बनते हैं नंगे कहीं के?······ यहां भलेमानुसों की बस्ती में बहू-बेटियों के बीच मजाक करते हैं!"

क्लब के गृहपति भय से कांप उठे। उन्होंने समझा, उनके मेहमानों की रसिकता फल लाई। कुछ दूसरे मेम्बर भी सकपका गये।

प्रौढ़ पुरूष की इस ललकार के उत्तर में सामने और अग़ल-बग़ल के मकानों से—"हैं, हैं, क्या, क्या!" की आवाजें······आने लगीं।

उस समय दिखाई दिया, गली के कीचड़ में फिसलने का भय न कर, जल्दी-जल्दी क़दम उठाता हुआ एक महरा; आक्रमण से बचने के विचार से दोनों हाथ सिर पर रखे, भयभीत मुद्रा में भागा चला जा रहा है। सम्मानित सज्जन के मुख से निकलने वाले वाक्य-बाणों का रुख उसी ओर था। यह देख क्लब के सज्जनों का भय दूर हुआ कि उनकी रसिकता का भेद न खुल कर वह अपराध बन जाने से बची रही।

सामने और अगल-बग़ल के मकानों से "क्या-क्या और क्यों-क्यों" का कुछ उत्तर न दे, प्रौढ़ सज्जन तीव्र स्वर में चीखे चले जा रहे थे—"बदमाश लुच्चा, हड्डियां तोड़ दी जायेंगी, सिर काट लिया जायगा····।"

इस रोमांचकारी दृश्य से आकर्षित हो गली में वर्षा और कीचड़ की परवाह न कर बहुत से भले आदमी उनके बरामदे में आ कूदे। गली की भद्र महिलायें भी कौतूहल न रोक सकीं और खिड़की तथा किवाड़ों की सांव से वह दृश्य देखने लगीं। अवसर देख चक्कर-क्लब के सज्जन भी वहां जा पहुंचे।

बार-बार यह प्रश्न पूछे जाने पर कि आखिर हुआ क्या और कैसे; प्रौढ़ सज्जन मुख से थूक की फुहार छोड़ते और अदृश्य महरे की ओर हाथों से इशारा करते हुए बोले—"अजी वो हरामजादा महरा यहां गली में छिनारा करता है। बदमाश ने सामने की उस खिड़की की तरफ इशारा किया"—हाथ बढ़ा कर सामने के मकान की ओर संकेत कर उन्होंने कहा, "और वहां से महरी ने उस से दिल्लगी करने के लिए यह कीचड़ और कालिख भरा जूना उस पर फेंका और देखिये यहां आकर गिरा। तमाम दीवारें और पास रखने के यह पीतल के गमले छिटा गये। देखिये तो साले बदमाश की करतूत! जूतियां लगें तो होश आये।"

"कहां गया बदमाश, साला? मारो साले को!"—कई ओर से ललकार सुनाई पड़ने लगी। गनीमत यह हुई कि महरा गली से निकल चुका था और वर्षा के कीचड़ में महरे को गली-गली ढूंढ़ कर उसे शिष्टाचार की शिक्षा देना किसी के लिये मनोरंजक न था।

संकेत से सब को चुप कराकर चक्कर-क्लब के इतिहासज्ञ ने पूछा—"आखिर इस महरी ने यह किया क्यों? महरे ने गाली दी होगी?"

"अजी वाह?"—हाथ को तिर्छे आगे बढ़ाकर प्रौढ़ सज्जन ने कहा, "वह साली मुस्करा रही थी ······बदमाश है एक नम्बर की!"

चक्कर-क्लब में साजन को संदेशा भेजने का गीत गाने वाले दार्शनिक ने कहा—"तब तो दोनों प्रेमी जीव हैं। महरे के प्रेम आवाहन के उत्तर में महरी ने प्रेम बाण चलाया परन्तु बाण लक्ष भ्रष्ट हो आप के बरामदे में आ गिरा।"

उनकी इस बात का विरोध गली के एक महाशय ने किया—"प्रेम क्या? ··· बदमाश हैं साले!" दूसरे एक महाशय ने कहा, "प्रेम क्या? यह क्या प्रेम है कि राह चलते खिड़की में बैठी औरत को इशारा कर रहे हैं और वह किवाड़ की ओट से झांक रही है?····यह प्रेम है या लुच्चापन और छिनारा।"

"तो फिर प्रेम है क्या"—दार्शनिक साहब पूछ बैठे।

गली के एक दूसरे सज्जन ने उत्तर दिया—"यह साले कमीने प्रेम थोड़े ही कर सकते हैं। यह तो बदमाशी करते हैं।"—एक और महाशय बोले,

"अरे प्रेम तो बहुत बड़ी चीज है पर कोई प्रेम कर सके तब तो ! प्रेम उसे कहते हैं जैसे मीरा प्रेम करती थीं। उन्हें प्रेम दीवानी कहते थे और जैसे राधा ने प्रेम किया था।"

"यह तो सब ठीक है, परन्तु वह प्रेम होता क्या है ?"—दार्शनिक ने फिर पूछा।

चक्कर-क्लब के साहित्यिक बोले,—"प्रेम-प्रेम सब कोई कहे प्रेम न जाने कोय ! शब्दों में प्रेम को प्रकट कर देना कठिन है। यह मन की स्वर्गीय भावना है। क्या खूब कहा है शायर ने, जिन्हों का इश्क सादिक है वो कब फरियाद करते हैं। लबों पै मोहरे खामोशी दिलों में याद करते हैं।"—और एक गहरी साँस ले, अपने रूखे लम्बे केशों को छिटका कर उन्हों ने कहा, "प्रेम बिना सूना है संसार ! प्रेम ही है जीवन का सार ? वह साहित्य की सुगन्ध है। वह बकने की चीज नहीं, अनुभव की वस्तु है।"

गली के एक और महाशय बोल उठे—"प्रेम क्या, मोह है एक किस्म का ! जो मनुष्य को अन्धा कर देता है। वास्तविक प्रेम तो वह है जो भगवान से हो ! सांसारिक प्रेम झूठा है और भगवान का प्रेम सच्चा। एक को कहा जाता है इश्के मिजाजी यानी आने-जाने वाला प्रेम और दूसरा है, इश्के हकीकी यानी सदा रहने वाला.......!"

आध्यात्मिकता की गंध से दार्शनिक को छींक आ जाती है। झट टोक बैठे—"क्यों साहब, प्रेम क्या इन्द्रियां और मन से परे, कोई सदा बनी रहने वाली आध्यात्मिक वस्तु से भी हो सकता है ?"

"हो क्यों नहीं सकता"—भगवान के प्रेम का समर्थन करने वाले सज्जन ने कहा, "हो क्यों नहीं सकता ? आध्यात्मिक प्रेम शारीरिक प्रेम की तरह क्षणिक नहीं। प्रेम तो भगवान का रूप है और भगवान प्रेम रूप हैं। महात्मा गांधी ने कहा है................"

"किसी ने कहा सही"—दार्शनिक ने फिर टोका, "पर सवाल तो यह है कि प्रेम होता है आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियों और मस्तिष्क से। यह सभी वस्तुयें शरीर का अंग हैं, भौतिक हैं और क्षण भंगुर हैं। जिन वस्तुओं

की ओर इन्द्रियां और मन आकर्षित होते हैं वे भी भौतिक और क्षणभंगुर हैं। इन दोनों के न रहने पर 'अमर' प्रेम रहेगा तो कैसे और कहां ?"

आध्यात्मिक प्रेम का समर्थन करने वाले सज्जन क्रुद्ध हो गये—"तुम आध्यात्मिक प्रेम की बात क्या जानो ? तुम फंसे हो इन्द्रिय वासना के फेर में।"

वासना के लांछन से लज्जित न होकर दार्शनिक ने पूछा—"तो महाशय, इन्द्रियों और मन के बिना इच्छा और वासना रहित आत्मा प्रेम करती कैसे है ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर आध्यात्मिक प्रेम के प्रेमी सज्जन ने न दिया, मानों उन्हों ने कुछ सुना ही नहीं। बोल उठे इतिहासज्ञ—"इन्द्रियों और मन के बिना प्रेम कैसे होगा, यह नहीं समझ सकते....खूब। अरे वैसे ही जैसे बरसात के मौसिम में गुड़ की भेली पड़ी पड़ी पसीजा करती है।"

"यानी आप आत्मिक प्रेम को नहीं मानते ?"—आत्मिक प्रेम के वकील विस्मय से चिल्ला उठे।

"आत्मा होती क्या है ? किसे कहते हैं आप आत्मा ?"—दार्शनिक ने प्रश्न किया। आत्मा जैसी सर्वमान्य वस्तु के विषय में शंका होते देख सभी को विस्मय हुआ। आध्यात्मिक प्रेम के समर्थक तिरस्कार के स्वर में बोले, "आत्मा नहीं जानते ? आत्मा वह है जो आप में बोल रहा है ? और इस शरीर के जैसा का तैसा बना रहने पर जिस आत्मा के अभाव में सब समाप्त हो जायगा। आत्मा अमर है और निर्लिप्त। गीता में कहा है—"नैनं छिदन्ती शस्त्राणी"....यानी आत्मा वह है, जिसे शस्त्र काट नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती,............ समझे ?"

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट किया—"फायरप्रूफ़, वाटरप्रूफ़, एयरप्रूफ और बुलेटप्रूफ़ * ? चीज तो ज़बरदस्त है साहब ! हवाई हमले में विशेष उपयोगी होनी चाहिये। परन्तु यह पहचान जो आपने बताई कि हम में और आप में जो कुछ बोलता है, वह आत्मा है, कुत्ते बिल्ली में जो बोलता है, वह आत्मा है तो रेल के इंजन में कौन बोलता है ?"

---

* जिस चीज पर आग, पानी, हवा और गोली का असर न हो सके।

"क्या अजीब दलील देते हैं साहब आप"—आत्मावादी साहब ने कुछ नाराज़गी से उत्तर दिया—"इंजन जैसी निर्जीव वस्तु की उपमा आप जीवों से देते हैं। मनुष्य की शक्ति के बिना इंजन है क्या चीज़ ? मनुष्य की शक्ति है, आत्मा।"

"जीव और निर्जीव में क्या अन्तर है साहब ?" दार्शनिक पूछा बैठे।

"जीव और निर्जीव में भी अन्तर आपको दिखलाई नहीं देता"—बिगड़कर एक सज्जन ने पूछा।

बहुत विनय के ढंग से दार्शनिक ने उत्तर दिया—"दिखाई देने की बात न कहिये साहब ? रेडियो में आपको दिखाई देती है केवल मैशीन परन्तु रांची और हजारीबाग के प्रान्तों में रहने वाले कोल-भीलों को यकीन नहीं आ सकता कि उस में आदमी बंद नहीं हैं। औरों की बात छोड़िये, अफ्रीदियों के मौलाना लोगों का ही फ़तवा है कि रेडियो शैतान की ताक़त और आवाज़ है ऐसे ही जीव के बारे में मतभेद हो सकता है। कोई कह सकता है कि बोल सकना जीव का गुण है। परन्तु बहुत से जीव हैं, जैसे अनाज में या फलों में पड़ने वाले कीड़े जो बोल नहीं पाते। कुछ लोग कहेंगें कि चलना-फिरना, हिलना जीव का गुण है परन्तु समुद्र की तह में या चट्टानों की सतह पर रहने वाले जीव या वनस्पति हिल-डुल भी नहीं सकते। फिर जीव निर्जीव की पहचान कैसे ? खैर आप यह तो मानते हैं कि जीव-जन्तुओं में जीव और आत्मा होती है फिर यह बताइये कि जिस प्रकार पशु मनुष्य की तरह शारीरिक प्रेम करते हैं उसी प्रकार वे मनुष्यों की तरह आत्मिक प्रेम भी करते हैं या नहीं ?"

आत्मावादी सज्जन बिगड़ उठे—"आप पशु और मनुष्य को एक में मिला देना चाहते हैं ?··· मनुष्य के समान बुद्धि पशु में कहाँ है ?"

"जी यही तो निवेदन करना चाहता था ! पशु और मनुष्य में अन्तर है केवल बुद्धि का। बुद्धि पशु में भी होती है परन्तु उसका बुद्धिबल कम रहता है, या कहिये उसका विकास मनुष्य की बुद्धि के जितना नहीं होता। काम मनुष्य भी वही करता है जो पशु करता है परन्तु बुद्धि की सहायता से अधिक संवार कर और अधिक सरलता से। सभी मनुष्यों में भी एक-सी बुद्धि नहीं रहती। जंगली मनुष्यों में कहीं कम बुद्धि होती है। सब पशुओं में भी बुद्धि

एक सी नहीं होती; कुछ में कम कुछ में अधिक। बुद्धि कम हो या अधिक, शारीरिक धर्म यानी सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से प्रकट होने वाला प्रेम सभी जीवों और मनुष्यों में होता है। अपने क्रम को जारी रखने के लिए ही सृष्टि स्त्री-पुरुष में आकर्षण पैदा करती है। प्रेम और आकर्षण का प्राकृतिक, शाश्वत और मूल रूप यही है। जंगली और बिलकुल जाहिल मनुष्य ऐसा ही प्रेम करते हैं, आत्मिक प्रेम वे बेचारे नहीं जानते। बुद्धि और शिक्षा बढ़ने से प्रेम का रंग भी बदलने लगता है। इन्द्रियां थक जाती हैं। उन से एक सीमा तक ही तृप्ति हो सकती है। इसलिये मनुष्य कल्पना और बुद्धि द्वारा भी खूब सुख भोगता है परन्तु इस मानसिक सुख का आधार इन्द्रिय सुख की कल्पना ही है। इन्द्रियों से किये जाने वाले प्रेम में छीना-झपटी और मार-पीट का डर रहता है इसलिए जब इन्द्रिय प्रेम का सुख, किसी को कुछ कहे बिना अहिंसात्मक रूप से कल्पना-ही-कल्पना में भोगा जाता है, तब उसे आत्मिक प्रेम कहते हैं। वास्तव में यह सब इन्द्रिय भोग के चतुरता पूर्ण ढंग हैं। इसे चाहे साहित्य कहिये या भगवद् प्रेम कहिये।"

दार्शनिक द्वारा की गई प्रेम की यह व्याख्या साहित्यिक को पसन्द नहीं आई। अनुत्साह से वे बोले—"मनुष्य की जितनी सद्‌भावना है, श्रेष्ठता है, उस सब को इन्द्रिय सुख का नाम दे देने से काम नहीं चल सकता। आप कहते हैं, प्रेम इन्द्रियों का आकर्षण मात्र है तो बताइये मित्र-मित्र में, भाई-बहिन में जो स्वर्गीय आकर्षण है, उस का इन्द्रिय सुख से क्या सम्बन्ध है?" दार्शनिक के मुख के सामने अपना हाथ लाकर उन्हों ने मुट्ठी यों सहसा खोल दी जैसे दलील का तोता उड़ा दिया हो।

साहित्यिक ही की भांति हाथ का संकेत कर दार्शनिक उत्तर देना चाहते थे परन्तु उनके उठते हुए हाथ को अपने हाथ से रोक इतिहासज्ञ बोल उठे—"मित्र-प्रेम या दीदी-भैय्या का प्रेम यदि प्राकृतिक वस्तु है तो यह पशुओं में कहीं क्यों नहीं दिखाई देता, साहब!"

"तो आप निरे पशु बन जाना चाहते हैं क्या?"—आत्मावादी ने शंका की। इनकी इस चोट से चारों ओर बिखर गई हँसी और मुस्कराहट की परवाह न कर दार्शनिक ने उत्तर दिया, "पशु नहीं बन जाना चाहते परन्तु पाखण्ड भी नहीं करना चाहते।'

"पाखण्ड कैसे, साहब ?"—चौंक कर साहित्यिक ने पूछा।

"यही कि स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक आकर्षण को आत्मिक-प्रेम और शुद्ध प्रेम का नाम दिया जाय और फिर समाज के भय से बैठे-बैठे पसीजा जाय। भैया-दीदी का प्रेम यदि प्राकृतिक और स्वाभाविक है तो वह माता के प्रेम की तरह सब जगह समान रूप से क्यों नहीं होता ? भैया-दीदी के प्रेम का उफ़ान खास कर नौजवानी में ही क्यों आता है और बहिनें तो एक दूसरे के प्रेम में आहें भरती नहीं।"

हाथ उठाते हुए एक साहब ने सुझाया—"माना-माना ! परन्तु माता के स्नेह में इन्द्रिय सुख कहाँ रहता है, साहब ?"

उपस्थित जनता की आंखों में झलकने वाली घृणा की उपेक्षा कर दार्शनिक ने उत्तर दिया—"परन्तु माता का स्नेह है क्या ? इन्द्रिय सुख का परिणाम ही तो ? माता का स्नेह प्राकृतिक है क्योंकि प्रकृति या सृष्टि के क्रम को जारी रखने के लिये वह आवश्यक है, परन्तु यह आत्मिक प्रेम किस खाज की दवा है ?"

इस बहस में किसी का उत्साह न देख उन्होंने फिर पूछा—"क्यों साहब यह महरे-महरी का प्रेम किस श्रेणी में आयेगा ? यदि ......"

उन की बात पूरी होने से पहले ही एक और महाशय बीच में बोल दिये—"अरे साहब आप भी क्या कहते हैं ? छिनारा और लुच्चेपने को प्रेम का नाम दे बदनाम करते हैं।" उनके समर्थन में दो-एक और भी ऐसी ही आवाज़ें आईं।

"सो तो ठीक है"—इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले, "परन्तु साहित्य में तो इसी प्रकार के प्रेम का चर्चा मिलता है। वासना से व्याकुल या प्रेमाकुल हो महरे ने गली से कुचेष्टापूर्ण संकेत किया और महरी ने प्रेम में उठा कर मार दिया जूना। परन्तु भागवत में भगवान् कृष्ण के जिस प्रेम का वर्णन है, उस में तो भगवान नंगी नहाती सुन्दरी ग्वालिनों के लंहगे,धोती ही उठा पेड़ पर चढ़ गये............"

इन्हें टोक कर प्रौढ़ सज्जन ने कहा—"क्या बकते हो जी, जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी !............तुम आध्यात्मिक प्रेम

को क्या समझो ? और अपनी नीच भावना से ही भगवान की लीला का अर्थ लगाते हो।"

दार्शनिक बोले—"साहब, आध्यात्मिक प्रेम नपुंसक प्रेम है। वासना को पूरा करने की जब सामर्थ्य न हो तो मन को बहलाने का तरीका है। स्वयं जो कुछ कर सकने का अवसर नहीं, भगवान के नाम से उस की कल्पना कर मन को बहला दिया। अपने को कृष्ण समझ लिया और समझ लिया कि कार्तिक की पूनों के दिन बगल में सखियों को समेट जमुना तट पर रास कर रहे हैं ; मनचाहे प्रेमी को पा सकने का साहस नहीं, गाने लगीं—मोरे पिया हृदय बसत हैं, कुंज करूं दिन राती। इन्द्रियों की विकलता से मन में उठने वाले उफान को सन्तुष्ट करने का यह एक ढंग है, जिसमें बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता। इस प्रेम में इन्द्रिय वासना का स्थान नहीं तो लिपटने-चिपटने की चर्चा की जरूरत; उस अनुभव को याद क्यों किया जाय ?"

क्लब में एक कामरेड दार्शनिक के मुख की बात ले उड़े—"अरे सुनिये, हम बतावें आध्यात्मिक प्रेम ऐसे है जैसे कभी नन्हा बच्चा घोड़े के लिये जिद्द करने लगे तो काठ का घोड़ा उसे देकर समझा दिया जाता है कि देखो कैसा अच्छा घोड़ा है इस से खेलो ! वही बात है, वासना को तृप्त करने के साधन और अवसर हैं नहीं, और गाने लगे कि सब से सुन्दर प्यारा तो अपने मन में ही है और लगे अपने ही गले में गलबहियां डालने ! या जैसे कालिज के लौंडे सिनेमा एक्ट्रेस की तसवीर को अपनी प्रेमिका मान कर खुश हो लेते हैं।

साहित्यिक महाशय ने कहा—"यह समझ और रुचि का प्रश्न है। साधारण बुद्धि के मनुष्य को जहां केवल काम-वासना दिखाई देती है, परिमार्जित रुचि और कला के पारखी वहां कला की उत्कृष्ट कृति देख पाते हैं !"

उन की बात को ठीक से न समझ कर क्लब के कामरेड हाथ जोड़ बोले—"साहित्याचार्य जी, कृपाकर साधारण बुद्धि की समझ में आने योग्य भाषा में समझाइये !"

अपनी प्रखर कलात्मकता के संतोष से साहित्यिक महोदय की आँखें ऊपर चढ़ गईं। दाँयें हाथ की तर्जनी उंगली उठा वे बोले—"सुनिये गुलाब का एक फूल खिला है। पूंछ और सींग हिलाता हुआ बैल आता है, और जिह्वा के एक

लपेटे में फूल को निगल जाता है। इसी प्रकार पंछ और सींग रहित पुरुष-पशु के लिये तरुण सुन्दरी के लावण्यमय शरीर का उपयोग उसे बाहों में निचोड़ लेने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। परन्तु सहृदय रसिक, कलात्मक कवि उसे केवल इन्द्रियों के भोग का ही साधन नहीं समझता। वह उसे व्यापक सौन्दर्य का प्रतिनिधि समझता है। वह ऊषा की अरुण आभा में, सूर्यास्त की रक्तिम छटा में, चौदस के चाँद में, जल पर नाचते कमल में, कोयल की कूक में, मृग के नयनों में उसे देख पाता है............।"

दार्शनिक महोदय ने टोक दिया—"रसिक महोदय, रस भंग के लिये क्षमा चाहता हूँ.......कलाविद रसिक लावण्यमयी तरुणी में जो सौन्दर्य देख पाता है, उस आकर्षण का आधार क्या है ?"

रस भंग हो जाने के कारण साधारण अवस्था में आ गये साहित्यिक जी के नेत्र और हाथ फिर फड़क उठे। पुलकित हो वे बोले—"सौन्दर्य की पूजा, सत्यम्-शिवम् सुन्दरम् की आराधना !"

दार्शनिक ने फिर पूछा—"परन्तु कोई वस्तु सुन्दर लगती है तो उसका कारण होता है, किसी तृप्ति की आशा या तृप्ति की स्मृति, जो मनुष्य के मन में चाह को गुदगुदा देती है...........।"

चौंक कर कवि महोदय ने कहा—"अहा, देखिये मन की तृप्ति, कल्पना की उड़ान और बुद्धि के सुख को आप नहीं मानते क्या ?........"

कामरेड बोल उठे—"मन की तृप्ति और बुद्धि का सुख क्या हवा में कुलांचे मारेगा ? कुलांच मारने के लिये भी किसी स्थान पर पांव टिकाने की आवश्यकता होती ही है। लावण्यमयी कामिनी की मुस्कान आपको याद आती है, इसलिये कि उस मुस्कान के बाद किसी और वस्तु की भी आशा की जा सकती है। कामिनी की मुस्कान नारंगी का सुन्दर छिलका है। आपको तृप्ति छिलके से नहीं, रस से ही होगी। कमल का फूल सुन्दर लगता है तो इसलिये कि उस से लावण्यमयी के कपोलों की याद रसिक जनों को आ जाती है। लाल कोमल पल्लव अच्छे लगते हैं तो इसलिये कि उससे सुन्दरी के होठों की याद आ जाती है। उनके उपयोग का ध्यान आ जाता है। मन का सुख है भोगे हुए भोगों की याद या भोग की कामना से भीतर उबलना.......यही साहित्य है।"

इन्हें टोंक, सबल घूंसा ऊपर उठा एक और सज्जन ने कहा—"यह सब काम-वासना और अश्लीलता है इसीलिये ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार के अश्लील साहित्य को निषिद्ध बताया है। यदि हमारी अपनी सरकार हो तो ऐसी किताबें जब्त हो जांय!"—इन महाशय की बात की ओर कुछ भी ध्यान न दे साहित्यिक महोदय ने आँखें तिर्छी कर अत्यन्त विस्मय के स्वर में पूछा—"इन्द्रिय भोग से परे आप मन के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते क्या? तो यह इच्छा उठती कहाँ है? मन इन्द्रियों से पृथक वस्तु है श्रीमन्!"

दार्शनिक ने उत्तर दिया—"मन इन्द्रियों का केन्द्र है।" परन्तु उस ओर किसी ने ध्यान ही न दिया।

साहित्यिक का समर्थन करने के लिये दयानन्द के भक्त बोल उठे—"जी हाँ, गीता में लिखा तो है कि इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन उनका सारथी। सारथी को चाहिये कि घोड़ों को वश में रखे!"

"ठीक है आपका कहना, परन्तु सारथी घोड़ों को वश में इसलिए नहीं रखता कि घोड़े मार्ग पर खड़े-खड़े पत्थर न हो जांय! वह तो उन्हें इसलिये वश में रखता है कि भटकें नहीं, तेज़ चाल से चलें और दूर से दूर की मंज़िल पर जल्दी पहुँचे; यानी भोगों को अधिक मात्रा में भोग सकें। ब्रह्मचर्य से शरीर को सबल इसलिये बनाया जाता है कि वह भोग के लिये अधिक समर्थ हो।"

क्लब के कामरेड कहते चले जा रहे थे परन्तु उन्हें टोक कर प्रौढ़ ने सुझाया—"मंजिल इन्द्रियों का भोग नहीं, मोक्ष और भगवान की प्राप्ति है।"

उन्हें तत्काल उत्तर मिला—"क्षमा कीजिये! मोक्ष और भगवान इन्द्रियों का विषय नहीं हैं। मोक्ष के लिये कमल और कामिनी की चर्चा की आवश्यकता नहीं।"

साहित्यिक की ओर देख दार्शनिक ने प्रश्न किया—"क्यों साहब यही है न उद्देश्य साहित्य का?"

अपने लम्बे सूखे केशों में उँगली चलाते हुए विचारपूर्ण मुद्रा में साहित्यिक जी ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"देखिये, यह बात ठीक है, और नहीं भी है। वह यों कि इन्द्रिय सुख तो संसार में है ही परन्तु वह क्षणिक है। उस से

ऊँचा सुख है काव्य सुख, जो चिरस्थायी है। बुद्धि का सुख, इंटेलेक्टचुअल प्लेयर! इन्द्रियां थक जाती हैं परन्तु मन नहीं थकता। मन का सुख, बुद्धि का सुख स्थिर रहता है। कवि अपनी कल्पना की भूमि पर शब्दों की शक्ति से सुख की जो नदी बहाता है, वह सदा ही रसिक जनों को तृप्ति देती है...।"

"तृप्ति देती है किसे ?......उसका उपयोग क्या है ?"—दार्शनिक ने दांये हाथ का घूंसा बांये हाथ की हथेली पर मारकर पूछा।

अपने नेत्रों को आधा मूंद, शान्त स्वर में साहित्यिक महोदय ने उत्तर दिया—"तृप्ति ?....साहित्य स्थूल इन्द्रियों की तृप्ति का विषय नहीं है। उस सुख की प्राप्ति के लिये स्थूल सांसारिक साधनों की ओर नहीं दौड़ना पड़ता। वह सुख आत्मतृप्ति देता है। स्वयम् अपने ही भीतर, जिसे स्वान्तः सुखाय कहना चाहिए ?"

दार्शनिक बोले—"इन्द्रियों की पहुँच से परे मन और आत्मा की तृप्ति साधारण स्वस्थ बुद्धि के लिये सम्भव नहीं, साहित्यिक महोदय! ऐसी तृप्ति अभ्यास और विश्वास से ही हो सकती है और उसके लिये चाट लगानी होती है। जैसे तम्बाकू का धुआं, मिर्च, काफ़ी की प्याली, शराब और अफीम पहले रुचिकर नहीं लगते परन्तु एक दफ़े चाट पड़ जाने पर वह पेट भरने वाले भोजन से भी अधिक जरूरी हो जाते हैं।"

क्लब के कामरेड साहब ने स्वर ऊँचा कर फिर टोक दिया—ऐसी ग़ैर जरूरी चीजों का अभ्यास डाल लेने से मनुष्य-समाज का क्या लाभ.......?"

साहित्यिक ऐसे नीरस मनुष्य की ओर केवल निराशा से देखते रहे, मुख से कुछ कह सकने का उत्साह उन्हें न हुआ। परन्तु दार्शनिक फिर बोले—"लाभ सभी वस्तुओं से हो सकता है। परन्तु समय और परिस्थिति के अनुसार आपके लिये कवीन्द्र-रवीन्द्र की कविता 'मानस सुन्दरी', जिसमें कवि मानस सुन्दरी से अनुरोध करते हैं—'समीप बैठे अपनी बाहुलता हमारे गले में डाल दो, अपने केश-पाश को फैला दो, अपने होठों को ऊपर उठाओ और अस्पष्ट, अस्फुट भाषा में फुसफुसा दो, तुम मेरे हो, केवल मेरे हो, केवल तुम्हीं मेरे हो', आपके किस काम की ? या कालिदास की वह कविता जिसमें वे कहते हैं, 'पूर्व दिशा के क्षितिज पर अस्त होता हुआ चन्द्रमा स्तम्भित क्यों हो गया इसलिये कि छत पर सोये प्रीतम को सोया जान संकोचशीला प्रिया ने उसके

होंठ चूम लिये। तब मक्कर साधे प्रियतम ने आँखें खोल दीं। लज्जाशील प्रेमिका का लज्जा से लाल मुख इतना सुन्दर जान पड़ा कि उसे देख चन्द्रमा स्तम्भित हो, अस्त होना भूल गया। कामरेड आपके लिये इस कविता का कोई उपयोग नहीं ......।"

विस्मय से साहित्यक ने टोका—"इसका कोई उपयोग नहीं; इस काव्यामृत का कोई उपयोग नहीं ? क्या कहते हैं आप.......?"

"खाक इस कविता का उपयोग है"—कामरेड बोले।

कामरेड को शांत रहने का संकेत कर इतिहासज्ञ बोले—"इस साहित्य का उपयोग किसी के लिये भी कुछ नहीं, यह आप नहीं कह सकते। किसी समय के राजाओं और सामन्तों के लिये इसका उपयोग था। कामनापूर्ति के साधन उनके पास वहुतेरे थे। परन्तु शरीर थक कर शिथिल हो जाता था। कामना की आग को जलाने के लिये ऐसा साहित्य उपयोगी था, जैसे अधिक भोजन पचा सकने के लिये चूरण का उपयोग होता है। इस साहित्य का उपयोग कवि कालिदास ने बताया है—'जैसे थके और शिथिल शरीर को सिप्रा नदी की वायु से स्फूर्ति मिलती है, वैसे ही श्रान्त मन को साहित्य के संकेत से।'

"नहीं नहीं इसका उपयोग हमारे आज दिन के भले आदमियों यानी मध्यम श्रेणी के लिये भी है। साहित्य द्वारा वे अप्राप्य वस्तुओं को मन और कल्पना से भोग लेते हैं..........."—दार्शनिक कह ही रहे थे कि साहित्यिक महाशय ने निराशा और उलाहने के स्वर में कहा, "तो फिर कविता का अर्थ क्या हाय रोटी, हाय रोटी ही है ?"

अपने ही हाथ पर घूंसा मारकर दार्शनिक बोले—"है क्यों नहीं ? पेट की तृप्ति के पश्चात लगने वाली भूख को तृप्त करने वाली वस्तु की चर्चा यदि कविता हो सकती है तो पेट की भूख, रोटी की भूख की चर्चा उसे पूरा करने के यत्न की चर्चा कविता क्यों नहीं..........?"

निराशा के स्वर में साहित्यक ने पूछा—"आप के विचार में कला क्या वासना को तृप्त करने का साधन मात्र है ?"

"क्षमा कीजिये साहित्यिक जी"—दार्शनिक ने उत्तर दिया, "जैसे भोजन को मिठाई का रूप दे देने से, उसमें सुगन्ध और चाँदी सोने के वर्क लगा देने

से, यह नहीं कहा जा सकता कि वह पेट भरने का साधन नहीं रहा, उसी प्रकार कला को सूक्ष्म और हाव-भावमय बना देने से यह नहीं कहा जा सकता कि वह वासना या जीवन की भूख तृप्त करने का साधन नहीं रही.........।"

"अजी यह कला वला ?"—कामरेड टोक बैठे।

"कला है............."—दार्शनिकने सिर खुजाते हुए उत्तर दिया, "हाँ कला है मनुष्य का मंजा हुआ और सुसंस्कृत प्रयत्न ....जीवन में सुचारु ढंग से तृप्ति की चेष्टा कला है। जीवन में सुगढ़पन और सौन्दर्य की भूख कला को जन्म देती है और कला वासना का क्षेत्र बढ़ाती है। कला के किसी भी रूप को ले लीजिये; चित्र कला का क्या है? मन लुभाने वाले पदार्थों या मन को गुदगुदाने वाले भावों और मुद्राओं को आँखों द्वारा चिरकाल तक भोग सकने योग्य बना देना। संगीत है, कानों द्वारा मस्तिष्क को सुख देने वाला संवेनद पहुँचाना। नृत्य है, शरीर की अंगभंगी द्वारा शरीर की लुभावनी कमनीयता और मन की चाह को प्रकट करना....।"

कामरेड बोल उठे —"भावों को प्रकट करना; तभी तो नाचने वालियाँ कमर बहुत मटकाती हैं और लहँगा उठा-उठा दिखाती हैं ......।"

"क्या बकते हो जी ?"—एक ओर से किसी ने डाँटा।

"अजी वाह !"—कामरेड ने उत्तर दिया, "देख न लीजिये जाकर सिनेमा पर।"

साहित्यिक ने टोक कर कहा—"क्या अत्याचार कर रहे हैं आप ? कला के मर्मज्ञ रसिकों की भावना और नीरस गँवार की भावना को आप एक में मिलाये दे रहे हैं। इससे कला का सूक्ष्म, सुसंस्कृत रूप नष्ट हो जायगा; मनुष्य की संस्कृति यानी कल्चर कहाँ रहेगी ?"

इनका समर्थन करने के लिए एक महाशय ने आवाज कसी—"अजी सभी धान बाइस पसेरी ?"

"वास्तव में उनमें कुछ भेद है भी तो नहीं।"—दार्शनिक ने उत्तर दिया, "भिन्न-भिन्न संस्कृति के मनुष्य वीणा के भिन्न-भिन्न तारों की भांति हैं। अधिक सूक्ष्म और तने हुए तार अधिक सुसंस्कृत मनुष्यों के समान होते हैं। वे सूक्ष्म स्पर्श से ही स्पन्दित हो जाते हैं। मोटे और ढीले तारों को

अधिक जोर से छूना पड़ता है। किसी की तृप्ति कवि रवीन्द्र की कविता में कामिनी को समीप बैठा लेने की कल्पना से हो जाती है तो किसी की साहित्यिक तृप्ति अँगियाँ दवाने का चर्चा किये विना नहीं होती। क्योंजी!"—सिर खुजाते हुए कामरेड की ओर देख उन्होंने पूछा, "क्या है वह गीत, "न ताको जोवन सरकारी हैं, बचके रहो जी..........!"

"वाह साहव, आपने तो भूसे और पान को एक में मिला दिया।"—कहकहा लगाकर कोई साहव वोले।

अपनी वात को यों मजाक में उड़ जाते देख दार्शनिक चिल्ला उठे—"पान या चटनी और भूसा या वाजरे की रोटी वास्तव में दो वस्तुएँ नहीं, एक ही हैं। पेट भरा रहने पर शौकीनों को पान या चटनी जैसी सूक्ष्म वस्तु से संतोष होता है परन्तु हल जोतने वाले भूखे को रोटी और हल खींचने वाले को चाहिए भूसा। उद्देश्य तो तृप्ति ही है।"

कामरेड वोल उठे—"साहित्यिकजी निरी चटनी ही चाटियेगा तो गला खराव होकर श्वास रुकने लगेगा और मर जाइयेगा।"

अपनी उत्साहहीन आँखें उठाकर साहित्यिकजी ने पूछा—"क्या कहा आपने ?"

हँसकर इतिहासज्ञ ने उन्हें उत्तर दिया—"निवेदन यह है कि साहित्य के भोजन में हाज़मे के लिये निरी चटनी ही न हो, कुछ पेट भरने की भी वात हो। प्रेम में आत्म-हत्या करना कविता है तो भूख से व्याकुल होकर रोटी पर झपटना कविता कैसे नहीं ? अटारी के झरोखे में बैठी रानी का विरह में आहें भरना कविता है तो गोवर थापती गूजरी का थक कर रोना कविता क्यों नहीं ?"

"अरे हाँ"—कामरेड ने टोककर पूछा, "अजी यह महरा-महरी का प्रेम अभिनय कविता है या नहीं ?"

कुछ चिढ़कर दार्शनिक वोले—"महरा-महरी का प्रेम कविता नहीं पाप है, क्योंकि महरा कम्वख्त मन की चाह को सर्द आहों से प्रकट न कर सीधे-सीधे वक देता है। क्योंकि महरी 'हटो भी हम नहीं जानते' न कह, मान न कर, जूना मारकर प्रेम-क्रीड़ा करती है। उनका यह प्रेमा-भिनय पाप है

क्योंकि उन्हें एक दूसरे से समय और स्थान निश्चित क य ' या होटल में मिलने का मौका नहीं । उनका यह काम पाप है क्योंकि धड़कते हुए हृदय और आर्द्र स्वर में एक दूसरे को भैया और दीदी कह आंखों में आंखें डाल, चुप रह जाकर अपने आकर्षण को शुद्ध प्रेम का नाम देना उन्हें नहीं आता । महरी को तमीज़ नहीं कि महरे को 'सांवरिया' कह, स्वयम् मीरा बन गीत गाये और मन के आवेग के लिये राह निकाल ले । उसे साहित्य जो नहीं आता । उनका यह कर्म बदमाशी और लुच्चापन है क्योंकि वे कांच की खिड़कियों के पीछे, रेशम के पर्दों की आड़ में, काउच पर बैठकर एक दूसरे की कमर में हाथ नहीं डाल सकते ...।"

"क्षमा कीजिये महाराज !"—हाथ जोड़कर मकान के मालिक प्रौढ़ सज्जन ने पुकारा—"क्षमा कीजिये, मेरे ही घर पर मेरा अपमान आपने बहुत कर लिया । यह कमरा घर के काम-काज और बाल-बच्चों के बैठने का है । आप अब कृपा कीजिये ।

दार्शनिक महोदय का मुख लज्जा और क्षोभ से लाल हो गया । वे एक ही छलांग में बरामदे से गली के कीचड़ में कूद गये । उनके पीछे-पीछे कामरेड 'चलो भैया चलो, अपने तख्त पर'—कहते हुए सुन्दर बरामदे से कूद आये और उसके बाद इतिहासज्ञ और साहित्यिक महोदय भी अपनी चादर को सम्भालते हुए ।

तख्त तक पहुंचने पर देखा कि मोढ़े सब उठा लिये गये हैं और तख्त खड़ा कर दिया गया है । दरवाजे की सांकल हिलाने पर भीतर से अस्पष्ट सी आवाज़ आई—"घर पर नहीं हैं । कहीं बाहर गये हैं ।"



दरिद्रनारयण की पूजा मत कर !

ऊँचे दर्जे के बाबू लोगों के मकानों में दालान होते हैं और दालानों में तख्त बिछे रहते हैं। सन्ध्या समय दफ्तर से लौट वे बदन को सांचे में कसे रखने वाले तंग कपड़े उतार, बन्धन से मुक्त शरीर को सहलाते हुए तख्त पर बैठ जाते हैं। उनकी आंखों को अपने बालकों की क्रीड़ा से सुख मिलता है। कानों में गृहलक्ष्मी के पांव की पायजेब और कड़े-छड़े की छनक आती रहती है। रसोई घर से उठती व्यंजनों की सोंधी सुगन्ध नाक को तृप्ति देती है। पान और हुक्के की नली से जिह्वा के रस का कार्य चलता है। शरीर पर फिरती, शनैः शनैः खुजाती उँगलियां स्पर्श सुख देती हैं। उनकी कृपा के उम्मीदवार आकर चारों ओर दरबार लगाते हैं, उनके सद्गुणों का बखान करते हैं। उन्हें शारीरिक विश्राम, विजय और मानसिक तृप्ति भी मिलती है।

साहबियत का रंग लिये बाबू लोग काम से लौट ड्राइंगरूम में सोफ़ा पर बैठ स्फटिक के समान स्वच्छ चीनी के पात्रों में चाय के मधुर और कशाय रस का पान करते हैं। फिर एक हाथ पतलून की जेब में और दूसरा बीबी की बांह में डाल हवाखोरी के लिये निकल जाते हैं। इसके अलावा उनके लिये लान में टेनिस और क्लब में 'ह्विस्ट' है। उनके लिए दूसरा मार्ग भी है कि जीवन के रस से छुटक मेम साहब के बटुए में टायलेट खरीदने लायक रुपये देकर स्वयं वे 'किसी से' मिलने का वायदा पूरा करने चले जांय।

मुसीबत है, सस्ती जात के बाबू लोगों की। बाबूगिरी उनसे नदी में बहते कम्बल की तरह चिपटी हुई है। सम्मानित समझे जाने के लोभ

में वे अपने आपको बाबू पुकारते हैं परन्तु बाबूपन का ठाठ उनके प्राण चूसे जा रहा है। वे क्या करें ? उनका घर दफ्तर की कुर्सी से अधिक आराम-देह नहीं। दफ्तर से घर लौट जल का एक गिलास निगल दफ्तर के सम्मानित कपड़ों को खूंटी पर लटका वे फिर घर से बाहर भागते हैं। घर में बच्चे को गोद ले खिलाने की तवालत से बचने और रसोई के धुएँ से रक्षा पाने का उनके हाथ एक ही उपाय है कि अमीनाबाद पार्क में बेंचों की शरण ली जाय। बीबी की नजर बचाये दो एक पैसों का सदुपयोग भी, चाट का पत्ता चाटने या बीड़ी फूंकने के रूप में, यहाँ हो सकता है ?

बीड़ी पिला सकने में समर्थ, बेकार कम्पनी के सहायक ऐसे ही बाबू पदवीधारी सज्जनों की प्रतीक्षा में चक्करक्लब के सम्मानित दीर्घ-जिह्वा और दुर्मुख * मेम्बर सन्ध्या समय अमीनाबाद पार्क की प्रदक्षिणा करते पाये जाते हैं। पान की दूकान के सामने खड़े ऐसे ही एक परिचित को पहचान चक्कर-क्लब के इतिहासज्ञ और कामरेड लपके चले आये। मुफ्त पान मिलने की आशा में, मित्रता के उद्गार से विह्वल स्वर में खीसें निकाल उन्होंने बाबू सज्जन को सम्बोधन किया—"पान खा रहे हो यार ?"

पान को झटपट मुंह में छिपा, कत्था भरी उंगलियों को पान की दूकान पर बिछे लाल कपड़े से पोंछते हुए बाबू सज्जन ने आदाब की तर्ज में हाथ हिला स्वागत कर निमंत्रण दिया—"बीड़ी पियो ?" और पनवाड़ी को बंडल बीड़ी 'शेर मार्का' देने के लिये हुकुम दे दिया

बीड़ी का बण्डल और इकन्नी से बचा पैसा वापिस मिलने की प्रतीक्षा में यह लोग खड़े थे। फटा और मैला बुरका ओढे एक बड़ी 'बी' साहिबा ने आलमीनियम का कटोरा दिखा, अल्लाह के नाम पर पैसे की दरख्वास्त की। इस आक्रमण से बचने के लिये, उस ओर पीठकर बाबू साहब ने काम-रेड को सम्बोधन किया—"और सुनाओ कामरेट !"

भागवान धनी की उपेक्षा से परास्त न हो बड़ी 'बी' ने दाता का हृदय पिघलाने के लिए लम्बी दुआ दी—"पैसा हाथ का मैल है। एक पैसा दो ! अल्लाह तुम्हें बेशुमार दौलत, सेहत बख्शे, दूध-पूत दे, बादशाहत दे, ओहदा दे, रुतबा दे और आखिर में बहिश्त दे।"

---

* जबान दराज और साफगो।

बाबू सज्जन ने संकोच और लज्जा से हाथ हिलाते हुए उत्तर दिया—"जाओ माई, आगे देखो !" परन्तु माई पैसा मिलने की आशा सहज न छोड़ सकती थीं। वे सखी का दिल पिघलाने के लिए उन्हें बादशाहत और बहिश्त मिलने की दुआ देती गई।

जान पड़ता है, कामरेड बाबू के संकोच और लज्जा से डर गये। कोई पैसा सज्जन की जेब में बचा रहने से मूंगफली की दावत हो सकने की आशा हो सकती थी। सज्जन की वकालत में बड़ी बी को सम्बोधन कर उन्होंने कहा—"अरे एक पैसे के लिये बादशाहत और बहिश्त बांटती फिरती हो, अल्लाह के यहां तुम्हारा इतना लिहाज़ है तो खुद ही बादशाह क्यों नहीं बन जातीं या उसी से पैसा मांग लो।"

इस बीच में रेशमी चादर और खद्दर की धोती पहरे सेठ वेशधारी एक और सज्जन पान की दुकान पर आ खड़े हुए। मघई पानों का बीड़ा तैयार करने का हुकुम दे वे प्रतीक्षा करने लगे। कामरेड के इस निर्दय उत्तर पर वे चुप न रह सके। शरीर पर गरद की चादर के नीचे हाथ डाल जेब से एक पैसा निकाल बादशाहत और बहिश्त के ठुकराये जाते इस सौदे को उन्होंने खरीद लिया।

कामरेड को नसीहत देने के लिये उन्होंने कहा—"किसी ग़रीब, मोहताज को कुछ दे नहीं सकते तो आप उस पर गुस्सा क्यों दिखाते हैं। ग़रीबों पर आप को दया दिखानी चाहिए या गुस्सा ?"

बाबू सज्जन का इकन्नी से बचा पैसा वापिस मिल चुका था। कामरेड और इतिहासज्ञ इनके साथ पार्क के भीतर घुसने के दरवाज़े की ओर चले तो सेठ जी उपदेश देते हुए साथ हो लिए। इस उपदेश का उत्तर देने के लिये इतिहासज्ञ मुंह खोलना ही चाहते थे कि सामने पहिये लगे सन्दूक में बैठे अपंग कोढ़ी को घसीटते हुए दूसरे कोढ़ी ने दया की भीख मांग ली। भागवान दाता का हाथ फिर अपनी जेब की ओर गया। एक पैसा और निकाल, संदूक में बैठे कोढ़ी पर फेंकते हुए उन्होंने कहा—"अब बताइये, यह बेचारा अंग-हीन क्या कर सकता है ? इस पर दया करना अपना कर्तव्य है या नहीं ?" आसपास आते-जाते लोगों की ओर उन्होंने गर्व और विजय के भाव से देखा।

कामरेड अपनी वर्दाश्त से अधिक सुन चुके थे। भाड़ के चने की तरह चटख कर उन्हों ने उत्तर दिया—"क्या होगा आपके इस पैसे से ? उसका कोढ़ दूर हो जायगा; या कोढ़ी की उम्र कट जायगी ? एक पैसा फेंक कर आप उसके अन्नदाता बनने का अभिमान दूसरों को दिखाना चाहते हैं। इससे आपका दिल बदल गया परन्तु कोढ़ी का दुख तो दूर नहीं हो गया। उसका पैसा माँगना और गिड़गिड़ाना तो वन्द नहीं हो जायगा""। उसके अन्नदाता बनने का अभिमान करने वाले आप कौन होते हैं ? उसके निर्वाह का प्रवन्ध करने की जिम्मेवारी समाज पर है। क्या आप समाज के मालिक हैं ?"""" जब समाज में मजदूरों और किसानों का राज होगा तो समाज यह सब प्रवन्ध करेगा। समाजवाद में कोई भीख नहीं माँग सकेगा।"""अपने घूंसे से हवा में प्रहार करते हुए कामरेड ऊँचे स्वर में कहते गये।

प्रशंसा और आदर के वजाय तिरस्कार और डांट सुन सेठ जी एक क्षण के लिये स्तब्ध रह गये। यह अपमान चुपचाप निगल जाने के लिये वे तैयार न थे। कामरेड की ओर घूरकर उन्हों ने धमकाया—"तुम्हारा मतलब है ग़रीबों और दीन-दुखियों पर दया नहीं करनी चाहिए ? यही है तुम्हारा समाजवाद ? आग लगे ऐसे समाजवाद को जिसमें अपने ही पेट की फ़िक्र है। ग़रीव यों ही मर जांय क्या ? कैसी राक्षसों जैसी वात करते हो ?"""वनते हैं समाजवादी ?"

सेठ जी के मुख से निकले उदारता और करुणा के यह उद्गार जान पड़ता है काफी दूर तक सुनाई दिये। कामरेड प्रत्युत्तर देना ही चाहते थे कि परेशान सूरत, खस्ता हाल, उतरती उम्र के, देहाती जान पड़ने वाले एक भले आदमी ने सेठजी के समीप आ हाथ जोड़ विनती की—"सेठजी दो दिन से मेरे वाल-वच्चे भूखे हैं। वहुत परेशानी है। कुछ सहायता हो जाय; भगवान् आपको सदा सुखी रखें। आपके सोने-चाँदी के महलों की ड्योढ़ी पर हाथी भूलें।"

इस अकस्मात आपत्ति से एक क़दम पीछे हटते हुए सेठजी ने कहा—"अरे भाई भगवान ने तुम्हें हाथ-पैर दिये हैं, कुछ काम करो !"

सहायता माँगने वाले व्यक्ति ने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की कि ग़रीब आदमी का घर देहात में है कर्जा और लगान न चुका सकने के कारण कुर्की

और बदखली हो गई। शहर में आये हैं। मजदूरी ढूंढ़ रहे हैं पर मिलती नहीं। कोई अपनी जान-पहचान का नहीं। दो दिन से भटक रहे हैं। मुंह में दाना नहीं गया।

बेकारी के व्यापक संकट का ध्यान कर कामरेड के साथी बाबू ने सहानुभूति के स्वर में कहा—"ओफ़, कितनी बेकारी फैल रही है!"

उस देहाती को सम्बोधन कर एक ओर से किसी ने कहा—"मज़दूरी नहीं मिलती तो चोरी क्यों नहीं करते?······ तुम्हें भूख लगी है तो जहां से मिलता है छीन कर क्यों नहीं खाते? मांगते क्यों हो?"

कामरेड ने घूमकर देखा उनके कंधे पर एक हाथ टिकाये और बग़ल में दो मोटी किताबें दबाये चक्कर-क्लब के दार्शनिक अपनी लम्बी गर्दन उन्हीं के कंधों के पीछे से ऊपर उठा सलाह दे रहे हैं।

देहाती को चोरी करने का उपदेश दिया जाता देख उपस्थित लोग विस्मय से दार्शनिक के दो दिन की हजामत से ढके और बड़े-बड़े गोल काँच के आइने से सुशोभित चेहरे की ओर देखने लगे।

"यह क्या,··· आप ग़रीब को चोरी करने का उपदेश दे रहे हैं; चोरी करेगा तो जेल नहीं जायगा?"—सेठजी ने चादर से बाहर अपने हाथ को बढ़ाते हुए पूछा।

"जेल जायगा तो क्या? जेल में रोटी मिलती है। भूखे मरने की अपेक्षा जेल में रहेगा, रोटी खायेगा तो क्या बुरा है?"—दार्शनिक के समर्थन में कामरेड बोले।

"चक्की जो पीसनी पड़ेगी!"—एक ओर से किसी ने चुटकी ली।

"चक्की पीसेगा तो कौन जान निकल जायगी? रोटी तो भर पेट मिलेगी? अरे चक्की तो औरतें पीस लेती हैं।"—कामरेड बोले। जान पड़ता है, जेल की हवा वे काफ़ी दिन खा चुके थे। अधिकार पूर्ण स्वर में उन्होंने कहा, "यहाँ ऐसा कौन सुख यह भोग रहा है जो इसे जेल में न मिलेगा?"

गांधी टोपी पहने एक सज्जन ने वितृष्णा के भाव से कहा—"वाह साहब, क़ैद और स्वतंत्रता कभी बराबर हो सकती है? मनुष्य को चाहिए कि अपनी

स्वतंत्रता के लिये जान दे दे। गुलामी से तो मौत अच्छी। आदमी भूखा रहे पर आज़ाद रहे !"

दार्शनिक कामरेड इन महाशय के कंधे को छूकर वोले—"देखिये जनाव, आजादी का मतलव भी आप समझते हैं ?"

इस प्रश्न की गुस्ताखी से कुछ नाराज हो अपनी गांधी टोपी सीधी करते हुए इन्होंने उत्तर दिया—"समझते क्यों नहीं ? कौन नहीं समझता ? आजादी का मतलब है, स्वतंत्रता ! जैसे आदमी स्वतंत्र होता है, आजाद होता है, जो चाहे करता है....और क्या ?"

खिलखिलाहट से हंस कर कामरेड बोले—"वाह साहव, मतलव तो आजादी का आपने खूब वताया ?"

रेशमी चादर ओढ़े सेठजी ने ऊँचे स्वर में विरोध किया—"वताया नहीं तो क्या ? स्वतंत्र का मतलव आजाद नहीं तो और क्या है ? आदमी को वन्धन न हो ! अपनी इच्छा से जो चाहे करे, जहां रहे-सहे रोजगार कर सके, हथियार रख सके।"

दार्शनिक कामरेड वाबू साहव के वण्डल से एक वीड़ी ले, कामरेड की समाप्त होती हुई वीड़ी से चिनगारी ले रहे थे, उतावली से कश खींच कर वोले—"जो चाहे सो तो दुनिया में कोई भी नहीं कर सकता सेठजी ! अव यह आदमी चाहे कि आपकी रेशमी चादर उतार कर ओढ़ ले....."

क्रोध में सेठजी ने ललकारा—"तुम्हारी हिम्मत है तो तुम ही उतार देखो न ?" वे मल्लयुद्ध के पैंतरे से हो गये।

दार्शनिक तुरन्त सम्भल गये। अपने कमची शरीर का ध्यान कर हाथ जोड़ उत्तर दिया—"नहीं सेठजी, यही तो हम कह रहे थे कि कोई नहीं उतार सकता।"

सेठजी ने विजय गर्व से गर्दन उठा चारों ओर देखा। दार्शनिक कहते चले गये—"मतलव हमारा यही था कि जो चाहे सो तो कोई नहीं कर सकता, न आजादी और स्वतंत्रता का यह मतलव ही है। ऐसी स्वतंत्रता तो समाज या संसार में एक समय एक ही आदमी भोग सकता है। उसके लिये दूसरे सव मनुष्यों को उसका गुलाम वनाना होगा। ऐसी स्वतंत्रता का मजा

लिया होगा नादिरशाह ने, कंस ने या नीरो ने। स्वतन्त्रता का मतलब है, जीवन-निर्वाह के लिये कोशिश या मेहनत कर सकने का मौक़ा मिले और जो मेहनत हम करें, उसका पूरा फल पा सकें। बताइये, ऐसी स्वतन्त्रता इस भले आदमी को कहां है, या कहां मिल सकती है ? इसकी बात छोड़िये, लाखों-करोड़ों आदमियों में से कितने आदमियों को ऐसी स्वतंत्रता है........?"

दार्शनिक अपनी बीड़ी बुझ जाने के भय से उससे कश खींचने के लिये रुके कि कामरेड बोलने लगे—"पूंजीवाद के राज में स्वतंत्रता केवल उन्हीं लोगों को हो सकती है जिनके पास पूंजी हो यानी जिनके हाथ में पैदावार के साधनजमीन, मिल, खानें वग़ैरा हों या इन वस्तुओं को पा सकने का साधन-बेशुमार पूंजी हो, जो अपने रुपये से बाज़ारों के व्यवसाय और कारोबार पर कब्ज़ा किये हैं। वे चाहें जैसे समाज के कायदे को चलाएँ ? किसान मजदूर और नौकरी पेशा आदमी की स्वतंत्रता कैसी ? जिसकी रोटी का टुकड़ा दूसरे आदमी की इच्छा पर निर्भर है, उसकी स्वतंत्रता कैसी ?"

गांधी टोपीधारी सज्जन ने पूछा—"तो आपका मतलब है कि वह चोरी करे, डाका डाले ?"

अपनी समाप्त बीड़ी को फेंक कामरेड ने उत्तर दिया—"आप कहते हैं वह चोरी न करे ? हम पूछते हैं, वह चोरी नहीं कर रहा तो कर क्या रहा है ? ......चोरी है क्या ? अपने परिश्रम से धन पैदा न कर दूसरे के परिश्रम से पैदा किये धन को हथिया लेना चोरी है ? यही तो वह कर रहा है। अन्तर है केवल उसके तरीके में........।"

कामरेड का हाथ पकड़ उन्हें चुप करा, दार्शनिक बीच में बोल उठे—"नहीं साहब, यह चोरी नहीं, यह डाकाजनी है।"

"डाकाजनी ?........वाह साहब क्या कहने आपके।"—सेठजी क्षोभ के स्वर में बोले—ग़रीब आपसे दया की भीख मांगता है और आप उसे डाकाजनी बताते हैं........डाकू कहीं दया करने को कहते हैं ? वे तो गले पर यों छुरी रखकर"—हाथ से छुरी चलाने का संकेत करते हुए भय सूचक आंखें फैला सेठजी ने कहा, "आपकी जमा निकलवा लेता है और क्या ?"

इनका समर्थन गांधी टोपी धारी महाशय ने किया—"निर्दय डाकू तो

हिंसा करता है और भीख मांगने वाला आपके हृदय तक पहुंचने की चेष्टा करता है। भीख मांगने वाला बल का प्रयोग और हिंसा नहीं करता।"

तर्जनी उंगली उठा, दार्शनिक विशेष बलपूर्वक बोले—"वह भी बल का ही प्रयोग है परन्तु डाकू से भिन्न बल का और दूसरे ही ढंग से·· यह आप जानते हैं, बल कई तरह का होता है ?"

"हां-हां, जानते क्यों नहीं"—गांधी टोपीधारी महाशय ने कहा, "पशु-बल और आत्मिक बल।"

बगल से खिसकती पुस्तकों को सम्भालते हुए दार्शनिक बोले—"जी ! ··· पशुबल या शारीरिक-बल और आत्मिक बल या विश्वास के बल के इलावा और भी बल होते हैं। जैसे जिह्वा का बल जिससे वकील लोग काम लेते हैं; रुप का बल जिससे हल्की तबीयत की औरतें काम लेती हैं; आंसू-बहाने या रूठ जाने का बल, जिससे शरीफ कहाने वाली स्त्रियां काम लेती हैं; रोने का बल जिससे बच्चे काम लेते हैं। यह बल साधारण हैं। इनके इलावा कुछ बल विशेष प्रकार के होते हैं। जैसे, तबीयत में अपने प्रति दया पैदा करने का बल। इस बल से अंधा, मंगता अपने और अपने बाल-बच्चों के भूखा मरने की करुण कथा सुनाकर आप से सहायता ले लेता है। दिन में चाहे जितनी दफा पैसा देते हुए उसके सामने से गुजर जाइये, वह पेट दिखाकर भूख की शिकायत करेगा। इससे अधिक सफल होता है कोढ़ी, यह आपके हृदय में करुणा, भय और घृणा पैदा करने की शक्ति रखता है। वह अपने सड़े, गले अंग दिखा आपको विवश करता है कि पैसा दीजिये। यदि आप आसानी से पैसा नहीं देते तो वह आपके दरवाज़े पर धरना देकर बैठ जायगा या अपने खून, पीप बहते और मक्खियों से भरे शरीर को आपके समीप लाकर आपके मन में उबकाई पैदा कर पैसा देने के लिये आपको विवश कर देगा। जीवन-निर्वाह के लिए कोढ़ी का यह तरीका उसका साधन या बल है। उसे देखकर आप जितने अधिक विचलित हों, उतनी ही अधिक सफलता उस मिलेगी इसके लिए वह अपने शरीर पर घाव बनाता है या खून-पीप से भरे मक्खियों को आकर्षित करने वाले चीथड़े लपेट कर काम चलाता है। उसका उद्देश्य है, आपको 'हृदय परिवर्तन' कर पैसा देने के लिए विवश करना ! एक और उपाय से हृदय परिवर्तन किया जा सकता है, आपको पैसा देने के

लिए विवश किया जा सकता है । कोई स्त्री अपने कपड़ों पर खून या लाल रंग के दाग़ लगा, दर्द से कराहती और निर्बलता से लड़खड़ाती आकर कहती है, परदेश में अभी हाल सड़क पर उसके सन्तान प्रसव हो गई; आप दयावान हैं कुछ सहायता कीजिये ! सन्तान प्रसव हो जाने की खुशी की बधाई उसे दी जा सकती है परन्तु उसके सन्तान प्रसव कर देने की जिम्मेवारी हम पर कैसे है·······?"

"आप पर कोई जिम्मेवारी नहीं साहब !"—गांधी टोपीधारी सज्जन द्रवित स्वर में बोले, "आप न्याय और समता की दुहाई देते हैं, शोषण और अन्याय के नाश के नारे लगाते हैं परन्तु दूसरे के दुख से आप को क्या मतलब ?– "दार्शनिक के विचारों के प्रति तिरस्कार भरी मुस्कराहट से, उपस्थित लोगों की ओर देख यह सज्जन बोले—"और क्या भाई ! समाजवाद-साम्यवाद का तो मतलब ही है कि किसी को उसकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं, जो कुछ है हमारा ही है । हम सब कुछ खा सकें और हड़प सकें ।"

इस लांछना और ताने से दार्शनिक सिटपिटा गये परन्तु क्रोध दिखाने से बात और भी बिगड़ जाती इसलिये होंठ दबाकर बोले—"हां भाई ! जात बिरादरी का, हम पेशा का दर्द कैसे न हो ? यदि धोखे-धड़ी और छल-प्रपंच से हृदय परिवर्तन करने के तरीके रोक दिये जायेंगे तो सत्याग्रह से हृदय परिवर्तन की महिमा कैसे रहेगी·········?"

"क्या·······क्या,·······क्या कहा, सत्याग्रह छल प्रपंच है ?"—गान्धी टोपी धारी सज्जन ने क्रोध और विस्मय से आंखें निकाल पूछा ।

"हां है"– सीना तानकर कामरेड ने उत्तर दिया । उनका कुर्ता पीछे से खींचते हुए दार्शनिक बोले, "अजी जाने दीजिये, सत्याग्रह की बात । अच्छा आप बताइये इन हीजड़ों को क्या कहेंगे ? शारीरिक शक्ति या पशुबल को वे काम में नहीं लाते । हिंसा वे नहीं करते, केवल प्रेम से अपना हक मांगते हैं ।"

"अरे भैया है तो ठीक"—भीड़ में से किसी सज्जन ने समर्थन किया—"हीजड़े पहले प्रार्थना करते हैं, बाद में दरवाजे पर धरना दे सत्याग्रह करते हैं ।"

भीड़ में चारों ओर खिलखिलाहट सुन दार्शनिक के मन से सिर पर आते शारीरिक वल के प्रयोग का आतंक दूर हुआ। भरोसे से हाथ उठाकर वे वोले—"यानी देखिये, वे लोग शारीरिक वल का प्रयोग विलकुल नहीं करते और आपका हृदय भी परिवर्तन कर देते हैं। उनकी करतूत से तमाशवीन लोग आपके दरवाजे पर खड़े हो जायंगे। जनता के सामने तमाशा वनने के भय से आपको अपना हृदय परिवर्तन कर उनकी मांग स्वीकार कर लेनी होगी। इसी तरीक़े से सत्याग्रही, शराव के ठेकेदार और विदेशी कपड़े के व्यापारियों और उनके ग्राहकों का हृदय परिवर्तन करने की चेष्टा करता है। सत्याग्रही का तरीक़ा है, अपनी वात मानने के लिये लोगों को विवश कर देना। यही काम यह भीख मांगने वाले करते हैं। शारीरिक वल प्रयोग किये विना अपनी कमाई का पैसा दे देने के लिये विवश कर देना उनकी कला और साइन्स है, यह भी तो सत्याग्रह ही है!

"और, डाकू क्या करता है? वह चपत मारकर, छुरा चलाकर या वन्दूक दिखाकर आपको अपना पैसा दे देने के लिये विवश करता है। परिणाम एक ही है। भेद वलों के प्रयोग का है; एक जगह शारीरिक वल का प्रयोग होता है, दूसरी जगह करुणा या सहानुभूति पैदा कर सकने के वल का। यह जितने लोग अपने परिश्रम से पैदा किये विना दूसरे के परिश्रम से पैदा किये धन को पाना चाहते हैं, सव चोर डाकू हैं। फरक़ इनके चोरी और डाके के तरीक़ों में है, यानी किस ढंग से हमें अपना धन दे देने के लिये, या उनकी वात मान लेने के लिये विवश कर देते हैं, हमारा हृदय परिवर्तन कर लेते हैं। कोई थप्पड़-घूंसा लाठी और छुरा दिखाता है? कोई कोढ़ और रोग से गले अंग, कोई मार सकने की धौंस देता है, कोई मार खा-कर मर जाने की! कोई आपके जागते-वोलते अनजाने में आपकी पाकेट काट लेता है, कोई आपको पीतल को सोना वता ठग लेता है, तो कोई आपकी दो रुपये का सामान पैदा करने वाली मेहनत को चवन्नी की मजदूरी वताकर ठग लेता है। कहिये, हैं कि नहीं सव एक जैसे चोर-डाकू?"—दार्शनिक ने अपनी उँगलियां नचाकर कहा, "अन्तर यह है कि कोई तरीक़ा आपकी पकड़ में आ जाता है, कोई नहीं। एक तरीक़ा ऐसा भी है कि आप लोगों की जेव काटिये और वे आपको अपना अन्नदाता मानें, आपकी इज्जत करें। इसके लिये चाहिये पूंजी। पूंजी के जोर से की जाने वाली चोरी शराफ़त का कारोवार कहलाती है। किसी

को उल्लू बनाकर की जाने वाली चोरी सत्याग्रह, और घूँसे के ज़ोर से की जाने वाली चोरी डाका कहलाती है।"

"अरे यार कामरेड !"—कामरेड के कंधे पर हाथ रखकर उन्हें बीड़ी पिलाने वाले बाबू बोले—"तुम भी क्यों नहीं ऐसा ही कोई तरीका करते। इतने समझदार बड़े तीसमार खाँ बनते हो ! क्यों नहीं कहीं से थोड़ी सी पूंजी बटोर लेते ! फिर मज़े हैं।"

"हम ऐसा कभी नहीं कर सकते !"—कामरेड बोले।

"अरे यार कहीं पूंजी पड़ी ही मिल जाय तो ?"—बाबू ने मज़ाक किया।

इस मज़ाक को गाली समझ कामरेड ने सिर ऊँचा कर उत्तर दिया—"हरगिज़ नहीं, हम खुद चोरी करेंगे कि दुनिया से चोरी मिटा देने की कोशिश करेंगे।"

कामरेड की इस शेखी से हो-होकर हँसते हुए, रेशमी चादर ओढ़े सेठ जी ने कहा—"वाहरे दुनिया से चोरी मिटाने वाले ! अभी तो उस भले देहाती को चोरी करने का उपदेश दे रहे थे।"

सेठ जी के इस आक्षेप से चौंककर दार्शनिक कमचियों जैसी अपनी दोनों बाँहें उठाकर बोले—"पूंजीवाद की पर्देदार चोरी से, जो कि उम्र भर के लिये मनुष्य के परिश्रम करने की शक्ति और स्वतंत्रता को चुरा लेती है, निस्सहाय आदमी की यह प्रकट चोरी और डाकाज़नी कहीं बेहतर है। पूंजीवाद की इस चोरी का अन्त तभी हो सकेगा जब असहाय और असंतुष्ट लोग गिड़-गिड़कर चोरी करने, दूसरों की कृपा से रोटी का टुकड़ा माँग कर पेट भरने के बजाय अपने बल और अपने अधिकार से अपनी रोटी पाने की बात सोचने लगेंगे। पूंजीवाद असहाय जनता के जीवन से जीवन निर्वाह कर सकने के अवसर को ही चुरा लेता है तो फिर शेष रह क्या जाता है ? मनुष्य की जीवित रहने की इच्छा, उसकी भूख उसे मजबूर कर देगी कि इस चोरी को सम्मानजनक बना देने वाली प्रथा का नाश कर दे। यह चोरी बन्द हो सकती है-- शोषण की व्यवस्था को बदल देने से न कि भीख देकर लोगों को बेबसी के तरीक़े से चोरी करने का हौंसला बढ़ाने से ? दरिद्रनारायण की पूजा का यह ढोंग ठाकुर लोगों की चाल है ताकि जीवन

के लिये अवसर न पाने वाले लोग, उनकी कृपा से पल कर उनके कृतज्ञ बने रहें और अपने जीवन को असम्भव बना देने वाली व्यवस्था को पलटने की कोशिश न करें, ठाकुरों की ठकुरैत न छिने ! भूख से व्याकल जनता को मुट्ठी भर चावल पा संतुष्ट बने रहने का यह उपदेश देना एक जाल है। ग़रीबों को सीख दी जाती है चर्खे और ग्रामोद्योग से आवे पेट रोटी पाकर भी संतुष्ट बने रहो, ताकि पैदावार के साधनों के मालिक ठाकुरों के सम्पत्ति के अधिकार न हिल जायँ। सुधारों और दया के यह सब ढोंग पूंजीवादी और जमींदारी चोरी को कायम रखने के तरीके हैं।"

"यानी आपका मतलब है कि दीन-दुखियों पर दया न की जाय, भूखे मरते को रोटी का टुकड़ा न दिया जाय, उन्हें यों ही मरने दिया जाय ?"—सेठजी ने विस्मय से त्योरी चढ़ा कर पूछा।

"जी हाँ"—दार्शनिक ने उत्तर दिया, "आपकी दया होगी यदि आप उन्हें उनकी क़िस्मत पर छोड़ दीजिये। कृपा कर उन्हें धोखा न दीजिये कि आप उन पर दया कर रहे हैं। अपने अधिकारों की रक्षा को दरिद्रनारायण की सेवा का नाम न दीजिये। उन्हें उनकी अवस्था समझने दीजिये और उस अवस्था के प्रति उनमें असंतोष पैदा होने दीजिये। उन्हें अनुभव करने दीजिये कि आपके और उनके हित अलग-अलग हैं, परन्तु आप ऐसा क्यों करने लगे ? आप तो बनेंगे दाता और महात्मा ! ढोंग करेंगे दीनों और दरिद्रों के सेवक होने का ? प्रेम, शान्ति, सेवा और अहिंसा का जाल बिछायेंगे और उसमें दलितों और ग़रीबों को सहायता देने के बहाने दान-पुण्य का चारा बिखेरेंगे। क्यों साहब, बहेलिया चिड़ियों को फंसाने के लिये जो चुग्गा फेंकता है उसे आप दान और त्याग समझियेगा या नहीं ?"

वह देहाती आया था पेट भरने के लिए दो पैसे मांगने परन्तु यहां उसे मिलने लगा उपदेश। मुंह बनाये खड़ा वह यह तमाशा देख रहा था। दार्शनिक की वक्तृता का प्रभाव मजाक में उड़ा देने के लिए गांधी टोपीधारी सज्जन ने उन्हें सम्बोधन किया – "भैया. इन समाजवादियों से ही फरियाद करो ? यह कहते हैं, भूखे और बेकार किसान-मजदूर को भीख मत दो ! यह तो तुम्हारा राज करायेंगे !"

वहस समाप्त होती जान आस-पास खड़े लोग मुस्करा कर चल दिये

परन्तु कामरेड अपना घूंसा उठाकर उत्तेजित स्वर में बोले—"ठीक है, हम भीख मंगवा कर ग़रीब जनता का अपमान नहीं करना चाहते। हम चाहते हैं ऐसी बात कि किसी को भीख मांगनी न पड़े, जैसा कि रूस के समाजवादी राज में है। भीख माँग कर कोई दूसरों पर बोझ क्यों डाले ? सबको अवसर होना चाहिये कि अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने निर्वाह के लिये काम कर सके और उनकी मेहनत का फल उन्हें मिल जाय; फिर कोई भीख मांगेगा क्यों ?"

पार्क के किनारे खड़े-खड़े चलने वाली इस बहस से ऊब कर सेठ जी आराम से बैठने के लिये पार्क के दरवाजे की ओर बढ़े और कामरेडों की बेतुकी बात का अन्तिम उत्तर देने के लिये उन्होंने सुनाकर ऊँचे स्वर में कहा—"समाजवाद की बहुत फिक्र उन्हीं लोगों को रहती है, जिनके अपने घर डेरा-डण्डा कुछ न हो।"

दार्शनिक और कामरेड अपने बाबू मित्र की बांह थामे लम्बे-लम्बे कदम रखते हुए उनके पीछे हो लिये। दार्शनिक ने भी ऊँचे स्वर में कहा—"सेठजी बात सच्ची कही आपने। जिनके डेरा-डण्डा कुछ नहीं, वे समाजवाद की फिक्र करते हैं और जिनके यहाँ पूँजी की गठरी धरी है, वे उससे डरते हैं और अहिंसा और प्रेम का प्रचार करते हैं। सवाल यह है कि अधिक संख्या किन लोगों की है। कम लोगों की राय मानी जाय या अधिक लोगों की ?"

दार्शनिक अभी कुछ और भी कहना चाहते थे, परन्तु एक बड़ी दुकान से रेडियो का गाना होने लगा; .... "पतली कमरिया उमरिया बारी....!" उसके मुक़ाबिले में समाजवाद के नाम की आड़ में रोटी की पुकार कोई मन लगाकर सुनेगा, ऐसी आशा न थी। कामरेड अपने बाबू मित्र से मूंगफली खिलाने का तकाजा करते हुए पार्क के दूसरे दरवाजे की ओर निकल गये।



मनुष्यत्व का आधार या विनाश की सभ्यता

चक्कर-क्लब के महावीरों को गरमी में वरसात और जाड़े से कम मुसीबत नहीं होती। हू ! हू ! करती, झुलसा देने वाली लू सभी तरह की आड़ में उनका पीछा कर उन्हें खदेड़ती फिरती है। वे खस और जवासे की टट्टियों की ओट ढूंढ़ते फिरते हैं परन्तु पंखों के नीचे सुख निद्रा लेते सज्जन उनकी कांय-कांय से विक्षिप्त हो उन्हें हांक देते हैं। उधर दो-चार दिन इन लोगों के मज़े में कट गये। एक चुनाव में कांग्रेस के टिकट पर खड़े होने वाले एक उम्मीदवार अवारागर्दी कर सकने वाले इन देवताओं के प्रति उदार और सहृदय वन गये।

दुमंजिले पर खस की टट्टी और विजली के पंखे से जेठ को फागुन बना सकने वाले उम्मीदवार के कमरे में दुपहरिया विता सकने की सुविधा इन लोगों को हो गई। भाड़ की तरह 'हू, हू' करते लखनऊ में ही मनुष्य द्वारा बनाये इस शिमले में शरण पाकर वहस का सुख पाने की आशा में सूर्य के ताप से शिलाजीत की तरह पिघलती तारकोल की सड़क पर कामरेड भगे चले आ रहे थे। पैरों में उनके रवरक्रेप के तले का, दस आने का जूता और छतरी की जगह सिर पर अखवार था। जान पड़ता था, लोहे की गरम सलाखें पैरों के तलवों से विंधकर खोपड़ी में जा निकली हैं। उनके सिन्दूरी चेहरे और आंखों से हीटर की तरह गरमी की लहरें निकल रही थीं।

कामरेड फर्श पर विछी हुई दरी पर धम्म से बैठ पैरों में चिपक गये जूते को खींचने लगे। जूता बनाने वाले के नाम एक वजनी गाली उनके गले

तक आकर रह गई·······वजह यह कि हवा से उड़कर टेढ़ी हो गई खिड़की पर लगी खस की टट्टी की राह, जहाँ से धूल भरी लू की फुफक कमरे में आ रही थी, उन्हें दिखाई दे गया, भीगी बोरियों से ढके ठेले को ढकेलता एक छोकरा जो दुमंजिले की ओर देखकर चिल्ला रहा था—"ओला वरफ दो पैसे सेर !"—कामरेड सोचने लगे ऐसी हालत में रबर के तले का जूता पहनना वेहतर है या नंगे पैर चलना।

जीना चढ़कर कमरे में प्रवेश करते समय 'आओ आओ !' की पुकार से उनका स्वागत हुआ था। उसका कुछ उत्तर उस परेशानी में वे दे न पाये। अब होश ठिकाने आने पर उन्होंने कहा—"भैया गरीब की सभी मौसिम में मौत !"

दार्शनिक और इतिहासज्ञ भी गान्धी टोपीधारी और दूसरे दो-एक सज्जनों के साथ उस छाया में काफी देर से सुस्ता रहे थे। कामरेड के इस संकट में अपना उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—"जीवन कटता है साधनों से। सब साधनों का बीज है पैसा। पैसा पास होने से तुम जूते के नाम पर यह बोझा पैर में क्यों फंसाते हो ? इस समय तुम टांगे पर औंघाते हुए आते और उस छोकरे से आइसक्रीम लेकर खाते-खिलाते ! अच्छा अब कोने में धरी उस सुराही से पानी पी सकते हो !

गांधी टोपी पहरे सज्जन ने राय दी—"इस समय यदि गुड़ का शरबत पियो तो लू और गरमी का असर दूर हो जाय।"

इतिहासज्ञ ने करवट बदल संशोधन पेश किया—"वरफ बिना शरवत का क्या मज़ा ?"—और उचक कर खिड़की से पुकार बैठे, "अबे ओ वरफ !"

कामरेड ने आशा से गृहपति की ओर देखा। परिस्थिति की मजबूरी समझ, दो पैसे इन्होंने निकाल दिये, चुनाव का मौका ठहरा। भीतर के दरवाज़े की ओर मुंहकर नौकर को चीनी लाने की आज्ञा दी। वरफ आ गई। चांदी का गिलास आ गया। वरफ का ठण्डा शरवत बारी-बारी पिया जाने लगा।

झुलसी हुई चांद में वरफ की ठण्ढक पहुंचने से कामरेड की जिह्वा चंचल हो उठी। ठण्डे गिलास का स्पर्श देर तक पाने के लिये गिलास थामे बोले—

"भाई वाह, बरफ भी क्या चीज है ? यानी इस गरमी में जब कि अंगारे बरस रहे हैं, हम बरफ पी रहे हैं। अजी साधन हों तो फिर साली गरमी क्या चीज है। यही कमरा जरा और बड़ा हो, जरा टट्टियों पर भी बरफ का पानी पड़े, पंखा चल रहा हो........!" उनकी आंखों में चैन की मस्ती आने लगी।

बर्फानी शरबत की उत्सुकता में इतिहासज्ञ की जिह्वा बेचैन हो रही थी, बोले—"इतनी लम्बी कहानी कह रहे हो, क्यों नहीं कह देते, एयरकण्डीशंड मकान हो ! ....गिलास इधर बढ़ाइये, और लोग भी पियेंगे ! .... लेकर बैठ ही गये !"

गिलास इतिहासज्ञ के हाथ में चला जाता देख गांधी टोपीधारी सज्जन ने कहा—"परन्तु बर्फ होती है नुक़सान देह ! चाहिए तो यह कि कुंएँ का जल हो, सुराही भरकर उसे रेत में दबा दिया जाय, ऊपर से छिड़क दिया जाय पानी। फिर देखिये, कितना ठण्डा जल होता है और सेहत के लिए भी अच्छा !"

इतिहासज्ञ एक सांस में आधा गिलास सटक कर बोले —"जी हाँ, बहुत अच्छा होता है; क्या कहना ? अब इस कमरे में रेत का ढेर लगा कर मटका दबाने लायक जगह आप निकालिये ? और फिर दिन भर बाहर तो कहीं जाना नहीं, उसी मटके के गले में बांह डाले बैठे रहिये; क्योंकि जल जो आप उसी का पियेंगे ! सीधे नहीं समझते कि मशीन की बदौलत जहां चाहिये बर्फ की कंकरी से ठण्डा जल पी लीजिये। माना, ज्यादा बर्फ गला पकड़ लेती है, पर मशीन की सुविधा से आप इनकार नहीं कर सकते !"

"मैशीन ही ने तो सत्यानाश किया है और कर रही है।"—गान्धी टोपीधारी महाशय ने बलपूर्वक कहा—"मैशीन की बदौलत ही तो सब ओर विषमता और अन्याय दिखाई देता है। कोई करोड़पति बना बैठा है, कोई टके का मजदूर ! और देखिये, मैशीन और कल-कारखाने बढ़ जाने से उद्योग धन्धों का केन्द्रीयकरण होता है। लाखों मजदूर अपने परिवारों से दूर इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें अनाचार और व्यभिचार फैलता है। मशीनों की बदौलत ही तो यह सब ग़रीबी और बेकारी तथा संकट फैल रहा है। भारत में जब मैशीन नहीं थी, सब ओर सुख शांति बरसती थी। रामराज्य था, कोई भूखा

नहीं मरता था, दही-दूध की नदी बहती थी। अब यह हाल है कि सब ओर कंगाली ही कंगाली दिखाई देती है......"

इतिहासज्ञ शरबत समाप्त करना भूल गये। शरबत से अधिक चस्का उन्हें है बहस का। गिलास को गोद में रख वे बोले—"जी हाँ ठीक तो है, मशीनों ही से तो अब कंगाली हो गई, पहले कहाँ थी? महाभारत के जमाने में द्रोणाचार्य जैसे विद्वान भी, राजकीय सैनिक विद्यालय के आचार्य होने की योग्यता रखते थे, भूखे मरते थे। उनके पुत्र अश्वत्थामा को दूध की जगह पानी में आटा घोलकर इसीलिये पिलाया जाता था कि भारत में उस समय दूध की नदियां बहती थीं और रबड़ी का कीचड़ होता था। उस समय समानता भारत में ऐसी थी कि बड़े लोग पालकियों पर सवार हो मनुष्यों के कंधे पर ढोये जाते थे। एक सवार बने और दूसरा सवारी यही रामराज्य की समानता है। अब मशीन का रिवाज हो जाने से वैसा कम होता है। लोग प्रायः लोहे पर चढ़कर चलते हैं इसलिये असमानता हो गई? क्या तोता रटन्त बातें करते हो यार? आँख खोलकर देखो.........यह बरफ? मशीन का आविष्कार होने से पहले इसे हम-तुम जैसों के फरिश्ते भी सुपने तक में कहीं पा नहीं सकते थे! सारे हिन्दुस्तान भर में दो-चार खुशक़िस्मत होंगे सम्राट जहांगीर या उनके भाई बन्द, जिनके लिये कभी ओला बरसने पर फूस में लपेट गढ़ों में दबाकर रक्खा जाता होगा या फिर हिमालय से ऊँटों और खच्चरों पर लदकर बरफ उनके लिये आता होगा, उसे बड़े नाज से अर्ग़वानी शराब में मिलाकर बिल्लौरी प्यालों में चुस्का जाता होगा और आज यह बर्फ; सड़क पर पैरों तले कुचली जाती है।"—गोद में धरे गिलास की ओर दार्शनिक का हाथ बढ़ता देख उन्होंने उसे जल्दी-जल्दी पी डाला।

गिलास दार्शनिक के बजाय एक और ही सज्जन के हाथ पहुँच गया। निराशा प्रकट न होने देने के लिये दार्शनिक ने गांधीवादी सज्जन को सम्बोधन किया—"अनाचार और अन्याय के लिये मशीन को दोष देना बुद्धिमत्ता नहीं महात्मा जी! मशीन है क्या; एक औजार! जिसे मनुष्य ने अधिक कारगर बना लिया है। उसका उपयोग मनुष्य की इच्छा से ही होता है। मशीन जीवन निर्वाह का वैसा ही साधन है जैसे खेत की भूमि। जीवन के साधन जिस व्यक्ति के हाथ में रहते हैं वह जीवन के साधन से रहित मनुष्यों को

सदा अपने लाभ के लिये काम में लाता है इसके लिये मशीन नहीं उसका मालिक दोषी है।"

गांधी टोपीधारी सज्जन आवेश में बोले—"क्यों साहब, जब मैशीन का रिवाज नहीं था, यह कल कारखाने और बड़ी-बड़ी मिलें न थीं, तब इस प्रकार शोषण कहां होता था ? और न आपकी पूंजीवादी और समाजवादी झगड़े की हिंसा ही थी। मैशीन में हिंसा और लोभ की भावना काम करती है, उससे विषमता पैदा होती है। वास्तविक साम्यवाद तो उस रामराज्य में ही था।"

गांधीवादी महाशय की बात का उत्तर देने में कहीं वे पिछड़ न जायें, इस भय से दार्शनिक शरबत के गिलास को जल्दी-जल्दी गले से उतार रहे थे। उनसे पहले ही इतिहासज्ञ बोल उठे—"रामराज्य में कैसा साम्यवाद था, यह या तो आप जानते होंगे या जानते होंगे राम। साम्यवाद और न्याय भगवान की प्रेरणा की तरह रूप बदलते रहते हैं। जल जिस पात्र में जायगा उसी का रूप धारण कर लेगा; लोटे में गया तो लोटे की शक्ल का और गिलास में गया तो गिलास की शक्ल, वैसे ही भगवान की प्रेरणा और न्याय भी प्रेरणा पाने वाले की बुद्धि और विश्वास के अनुसार होते हैं। साम्यवाद का अर्थ है, समता। इस ज़माने के क़ानून की नज़र में सब समान हैं। कोई भी कत्ल करे फाँसी मिलेगी। जो कोई मुनासिब कीमत अदा करे, चाहे जो चीज़ खरीद सकता है.......।"

एक और सज्जन ने टोक दिया—"परन्तु सब लोग क़ीमत अदा कर कहां से सकते हैं ?.......अरे जेब में क़ीमत हो तब तो !"

दार्शनिक ने उत्तर दिया—"अरे भाई यह पूंजीवादी समता है। समता इस बात की नहीं कि सब के पास समान पूंजी या कीमत हो। यदि कीमत नहीं दे सकता तो उसे कुछ नहीं मिलेगा ! समता है पूंजीवादियों के लिये। मौजूदा व्यवस्था के पक्षपाती कहते हैं कि हमारे कानून में सब के साथ एक-सा व्यवहार है। जो चाहे, जहां चाहे, जैसा व्यापार, रोज़गार कर सकता है, मेहनत मज़दूरी कर सकता है। कानून तो किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। जो जितना परिश्रम करता है, मज़दूरी पा जाता है।"

कामरेड ने टोका—"मेहनत करने वाला अपने परिश्रम की पूरी मज़दूरी कहाँ पाता है ? वह तो मालिक खा जाता है।"

उन्हें समझा कर दार्शनिक बोले—"अरे भाई परिश्रम का पूरा फल तो वह सामान हुआ जो मज़दूर पैदा करता है। हमारा मतलब है मज़दूरी से। मज़दूरी है, मेहनत करने वाले के शरीर का दिन भर का किराया, वह चाहे सोना खोदे चाहे कोयला ! आपको मानना पड़ेगा कि कानून किसी से रियायत नहीं करता। किसी के साथ ज़बरदस्ती नहीं कि तुम फलां काम करो और तुम्हें जबरस्ती इतनी ही मज़दूरी दी जायगी। यदि कोई समझता है कि उजरत कम है, मजदूरी न करे। कानून की समता से आप इनकार नहीं कर सकते। यह एक दौड़ है, जिसमें सब को समान रूप से दौड़ने का हक़ है। यह दूसरी बात है, कि कुछ लोग घोड़े पर चढ़कर दौड़ते हैं, कुछ पैदल। यह व्यवस्था की खूबी है कि कुछ लोग घोड़े रख सकते हैं और कुछ नहीं। यह व्यवस्था आपको पसन्द न हो, पर यह कानून है ! आप इसे तब तक मानने के लिये मजबूर हैं जब तक कि आप इसे बदल नहीं देते !"

"यह कानून शैतानी क़ानून है"—गांधीवादी सज्जन गरज उठे, "हम जिस साम्यवाद और रामराज्य की बात करते हैं, जैसा कि भारत में था, वह दिखाने का नहीं परन्तु सद्भावना का क़ानून और साम्यवाद था।"

"सद्भावना का साम्यवाद ?"—इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया और बोले, "जी हाँ, ठीक ही तो फर्माया आपने ! सद्भावना का साम्यवाद प्राचीन भारत में ज़रूर रहा होगा। भारत के धर्मात्मा लोग कहते थे, "आत्मवत् सर्व भूतेषु' सब प्राणियों को, जीव जन्तुओं को अपने ही समान समझो, सब में एक ही आत्मा है यह कहने के बाद वे मज़े में घोड़े और हाथी पर सवारी गांठते थे कभी हाथी घोड़े को तो वे अपने कंधे पर बैठाते नहीं थे ?

गांधीवादी सज्जन के समीप ही बैठे, श्वेत खद्दरधारी हृष्ट-पुष्ट शरीर और गले में सोने की जंजीर पहने दूसरे सज्जन ने आगे बढ़ उत्तर दिया—"तुम्हारे मार्क्स और लेकिन, या तुम्हारे रूस के साम्यवाद में जानवर आदमियों पर सावरी करते होंगे !"

इस उत्तर से इतिहासज्ञ साहब के चेहरे की मुस्कराहट काफ़ूर हो गई। चुप रहने का संकेत करने के लिये इनकी जाँघ पर हाथ रखते हुए दार्शनिक

बोले—"देखिये मार्क्स और लेनिन को तो घोड़े और हाथी सिर पर ढोने की ज़रूरत नहीं थी। वे तो कहते नहीं कि सब जीव समान हैं। वे साम्यवाद का उपदेश भी नहीं देते, समाजवाद की बात करते हैं; जिनका अर्थ है कि पैदावार के विशाल साधनों को व्यक्तिगत सम्पत्ति बना उन्हें व्यक्तिगत मुनाफ़े के लिये ही सीमित न रख कर उन पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार हो। प्रत्येक समाज व्यक्ति का अंग है इसलिए उनका अधिकार उन साधनों पर समान रूप से है। साम्यवाद एक चीज़ है, समाजवाद दूसरी! साम्यवाद कहता है सब समान हैं। समाजवाद कहता है सब को समान अवसर होना चाहिये।

टोक कर गांधीवादी सज्जन ने पूछा—"मशीनों से पैदा होने वाली प्रतियोगिया से पहले भारत में ऐसी विषमता न थी; क्या आप इससे इनकार कर सकते हैं?"

इतिहास की साक्षी की बात आते ही इतिहासज्ञ बीच में कूद पड़े—"भारत में समता थी तभी तो राजा और सामन्त लोग पालकियों पर चढ़कर चला करते थे, दास-दासियों की सेनायें बड़े आदमियों की सेवा में रहती थीं; दान देने की इतनी महिमा थी? क्यों जनाब, जब सभी खुशहाल थे, समान थे, साम्यवाद था तो कोई किसी के दरवाज़े पर दान मांगने या दान स्वीकार करने जाता क्यों होगा? अगर समता और न्याय था तो उस समय के ठाकुरशाही क़ानून के अनुसार जिसमें दास और सेवक का कर्त्तव्य था मालिक के हित के लिए मर मिटना। ऐसी क़ानूनी समता का दावा तो आज का क़ानून भी करता है।"

कामरेड बीच में बोल उठे—"दास-सेवक और मालिक में समानता कैसे हो सकती है?"

गान्धीवादी सज्जन ने उन्हें उत्तर दिया—"जनाब उस समय सेवक और स्वामी का मतलब वह नहीं था जो आज है। उस समय उसमें पिता-पुत्र का सम्बन्ध था। उनके हित समान थे। स्वामी बल्कि अपने आपको दास का सेवक समझता था·········।"

"यह आपने एक ही कही"—इतिहासज्ञ बोल उठे, "यदि दास की सेवा ही करनी हो स्वामी को मालिक बनने की ज़रूरत क्या? यदि स्वामी और दास के हित समान हों तो एक स्वामी और दूसरा दास कैसे होगा? प्राचीन

समय में यदि दासों का उपयोग करने और शोषण करने की प्रथा न होती तो 'स्वामी' और 'दास' यह दो शब्द ही न बनते। जिस वस्तु या भाव का अस्तित्व न हो, जिसका उपयोग न होता हो, उसके लिये शब्द ही न होगा। आप ही बताइये प्राचीन भारत की भाषा में सीने की मशीन को क्या कहते थे; आइसक्रीम को क्या कहते थे; रेल के गार्ड या चेचक का टीका लगाने के लिये कौन शब्द था ? जो बात या काम होगा शब्द उसी के लिए होगा। आप बताइये"—हाथ आगे बढ़ा यह बोले....."हुव्वम" शब्द का क्या अर्थ है ?

आस-पास बैठे सभी हैरान रह गये। यह शब्द पहले किसी ने न सुना था। "हम नहीं जानते"—गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया, "आप ही बताइये !"

अपने बढ़े हुए हाथ को पीछे खींच इतिहासज्ञ बोले—"जी, हुव्वम शब्द का कुछ अर्थ नहीं....क्योंकि वह किसी भाव को या वस्तु को प्रकट नहीं करता। क्या दास और स्वामी शब्द भी ऐसे ही निरर्थक हैं ? सेवक और मालिक शब्द स्पष्ट भावों को प्रकट करते हैं। जहाँ सेवक और मालिक होंगे वहाँ समानता नहीं हो सकती; चाहे रामराज्य हो चाहे रावणराज्य ! और रामराज्य की अहिंसा का अर्थ होगा—सेवक और स्वामी के सम्बन्ध को बनाये रखना !"

"और आपके समाजवाद में सेवक नहीं रहेंगे, क्यों साहब ?"—सोने की जंजीर पहने सज्जन ने पूछा

"नहीं रहेंगे, हरगिज, नहीं रहेंगे।"—हवा में घूंसा मारकर कामरेड गरज उठे।

"यानी संडास साफ करने, कपड़े धोने, खाना पकाने, बर्तन मांजने के सब काम कामरेड लोग खुद ही किया करेंगे ? तो साहब आप अब ऐसा क्यों नहीं करते ?"—सोने की जंजीर पहने सज्जन ने कामरेड को सम्बोधन किया।

"अब कैसे करें !"—कामरेड ने परेशानी से कहा, "समाजवाद में सब लोग मिल-जुलकर करेंगे।"

एक और ही सज्जन ने शंका की—"अरे भाई, जो कोई भी ऐसा काम करेगा, सेवक बन जायगा ! कहिये, क्यों ?"

अवसर देखकर गांधीवादी सज्जन ने ऊँचे स्वर में उपदेश किया—"तभी तो कहते हैं, भोग विलास की मौजूदा सभ्यता ने सब विषमता पैदा की है।

यह सभ्यता शोषण के आधार पर खड़ी है। हमें अपने जीवन को सादगी की ओर ले जाना चाहिए, अपनी आवश्यकतायें कम करें, अपना काम खुद हाथ से करें; यही आध्यात्मिक साम्यवाद है।"

चिकने हाथ-पैर, साफ कपड़े और चश्मा पहने एक और बहस में शामिल हो गये—"साहब कहने को तो आप भी ठीक कहते हैं और यह (इतिहासज्ञ की ओर संकेत कर) भी ठीक कहते हैं परन्तु प्रश्न है क्रियात्मक बात का। यदि आपके कहे अनुसार आवश्यकतायें कम करते जाइये तो जीवन में रह क्या जायगा ? पेट भर लेने के सिवा सभी बातें अनावश्यक हो जायेंगी। जब कुछ करना ही नहीं, झंझट बढ़ाना नहीं, तो किसी बात पर विचार करना भी अनावश्यक हो जायगा। यदि पशु की तरह रहने से ही मनुष्य को शान्ति और सुख मिल सकता था तो क्या मनुष्य की बुद्धि का विकास अब तक उसका नाश ही करता आया ? मनुष्य के जीवन में यदि विकास और फैलाव न हो तो मनुष्य जिये किस लिये ? उस में और पशु में अन्तर किस बात का रह जाय ? यदि मनुष्य के जीवन में फैलाव और विकास होगा तो उसकी आवश्यकतायें बढ़ेंगी, अनेक प्रकार के काम होंगे और उन्हें बांटकर मनुष्यों को करना ही पड़ेगा। कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें सेवा समझा जाता है परन्तु आवश्यक हैं, इससे आप इनकार नहीं कर सकते। कोई तो इन्हें करेगा ही····?"—इन्हें जिज्ञासू और निष्पक्ष समझ किसी ने बीच में टोका नहीं।

इनकी बात पकड़ते हुये इतिहासज्ञ बोल उठे—"आपका कहना बिलकुल ठीक है। समाज के विकास के लिये समाज में सेवकों का होना आवश्यक था और आज भी ऐसे काम करने वालों की जरूरत है, इसमें सन्देह नहीं। उस जमाने में यदि गुलामों के परिश्रम का उपयोग न कर यदि सामर्थ्यवान अपने ही हाथ से कताई-बुनाई कर अपने ही हाथ से अपने लिये बैलगाड़ी गढ़ या झोंपड़ी थापकर गुजारा करने की क़सम खाये रहते तो न व्यापार ही पनपता और न कला का विकास होता। मनुष्य को चरने और अपना सिर छिपाने के काम से ही फुर्सत न मिलती। न संगीत बनता, न गणित, ज्योतिष और न आध्यात्मिक कल्पनायें गढ़ी जा सकतीं। न्याय के लिये जान देने वाले विद्वान अरस्तू ने कहा था कि सभ्यता के विकास और रक्षा के लिये गुलामी की प्रथा आवश्यक है।"

एक सज्जन टोक कर पूछ बैठे— "तो फिर आपका यह समाजवाद और समानता सभ्यता की विरोधी है न ?……………"

"आपका कहना ठीक है"—दार्शनिक ने उत्तर दिया, "यदि समता से मतलब हो गांधीवादी साम्यवाद का और उसके लिये अमीरों से यह प्रार्थना करना कि वे ग़रीबों पर दया करके उनके बराबर हो जायें !"

आस पास फूट उठने वाली हंसी से खिसियाकर सोने की जंज़ीर वाले साहब ने ऊंचे स्वर में कहा—"नहीं तो आप सब ग़रीबों को अमीर बना लीजिये !"

"हां हम तो यही चाहते हैं ।"—कामरेड ने अपने सीने पर हाथ मारा ।

गांधीवादी सज्जन ने धैर्य से प्रश्न किया—"जब तक करोड़ों आदमी ग़रीब न होंगे, आदमी अमीर किस प्रकार बन सकते हैं ? जब तक आपकी सेवा के लिये सेवक न होंगे, आप आराम कैसे पा सकते हैं ?"

'हम तो इससे ठीक उल्टा देखते हैं साहब ! मशीन है तो यह पंखा फर-फर चल रहा है वर्ना एक आदमी को बाहर बैठकर पंखा खींचना पड़ता; कुछ आदमी पंखा खींचते और कुछ चैन करते, जैसा कि रामराज्य में होता था । अब दूसरों को धूप में खड़ा किये बिना ही सभी लोग पंखे के नीचे बैठ सकते हैं । बिजलीघर में बिजली का इंजन चलाने वाले भी पंखे के नीचे बैठे होंगे । यह मशीन की ही कृपा है । अब पानी की गागर सिर पर लेकर कहार को चौथी मंजिल पर नहीं चढ़ना पड़ता । बिजलीघर और वाटरवर्क्स में बैठे आपका पंखा चलाने वाले या आप को पानी पहुंचाने वालों को आप अपना सेवक नहीं समझ सकते ? किसी का कोई काम करने से आदमी सेवक नहीं बन जाता । कोई भी आदमी सेवक बनता है, अपने जीवन निर्वाह के लिये दूसरे के कब्जे में आ जाने से और उसके परीश्रम का मूल्य दूसरे द्वारा निश्चय किये जाने पर ! इंजीनियर, डाक्टर और वकील आपका काम करते हैं और मुंह पर चांटा मारकर दाम वसूल करते हैं; वे आपके सेवक नहीं परन्तु कहार और मेहतर आपके सेवक हैं । ज्यों-ज्यों मशीन की शक्ति बढ़ती जायगी, सेवकों की संख्या घटती जायगी और समता तथा समाजवाद का अवसर……।"

अपनी बात बीच में छोड़, खुली हुई खिड़की की ओर संकेत कर इतिहासज्ञ ने कहा—"वह देखिये आपकी अहिंसा""" —धूप में पिघली तारकोल की सड़क पर ईंटों से भरा एक ठेला जा रहा था। पहियों के सड़क में गड़-गड़ जाने से गाड़ी खींचना भैंसे के लिये कठिन हो रहा था और ठेले वाला भैंसे की पीठ पर तड़ातड़ चाबुक बरसा कर उसे गालियाँ दे रहा था, "क्यों साहब, यदि इस से छः गुनी ईंटें भरकर लारी धड़धड़ाती हुई चली जाती तब तो हिंसा हो जाती न ?…क्यों ?"

"आपकी लारी और मशीन हज़ारों-लाखों को बेकार कर देगी तो उनकी हिंसा होगी या नहीं ?"—गांधीवादी सज्जन ने पूछा।

"जी ?"—इतिहासज्ञ ने विस्मय से पूछा, "तो आप मेहतर से संडास साफ कराते हैं, कहार से पानी भराते हैं, रिक्शा की सवारी करते हैं कि ग़रीब कहीं बेकार न हो जायं, हिंसा न हो। आप यह भी फर्माते हैं कि सब काम अपने ही हाथ से करने चाहिए; तब यह लोग बेक़ार होंगे या नहीं ?"

"यह तो मशीन के व्यवहार के तरीके पर निर्भर करता है कि उससे पैदा किया धन किसके हाथ में जाय, और लोग बेकार हों या न हों…।"—दार्शनिक कह रहे थे कि चश्माधारी सज्जन टोक बैठे, "देखिये सभ्यता के विकास के लिये आप जरूरी समझते हैं कि कला-कौशल का विकास हो, यहां तक कि उसके लिए आप गुलामी की प्रथा तक को उचित बता गये तब फिर आप पूंजीवाद की निन्दा कैसे कर सकते हैं ?"

इतिहासज्ञ और दार्शनिक को दलील के शिकंजे में फँसा देख गांधीवादी सज्जन और उनके साथी प्रसन्नता से कान खड़े कर उस ओर देखने लगे। इतिहासज्ञ ने अपनी तर्जनी उँगली उठा और सेह के काँटों जैसे सिर पर सीधे खड़े बालों को हिलाते हुए कहा—"देखिये साहब, यह ग़लतफ़हमी हो रही है। हमने यह नहीं कहा कि गुलामी की प्रथा उचित है। हमने यह कहा कि एक समय समाज में गुलामी की प्रथा रहने से समाज को ऐसा लाभ हुआ। इसी प्रकार पूंजीवाद ने भी उद्योग-धन्धों को विस्तृत रूप देने में सहायता दी परन्तु अब वह अपना काम कर चुका। आज जैसे गुलामी की प्रथा हिंसा मानी जायगी वैसे ही पूंजीवाद भी हिंसा का ही एक रूप है।

सोने की जंजीर पहने सज्जन हो-होकर हंसी में अपनी आंखें ऊपर चढ़ा

बोले—"यह खूब रही, जो वस्तु तब अच्छी थी, अब अच्छी क्यों नहीं।" उनकी इस हंसी का प्रभाव दूसरों के होठों पर भी फैलता देख इतिहासज्ञ चौंके और मकड़ी की टाँगों की-सी अपनी दसों उंगलियों को हवा में नचाते हुए बोले—"ठीक है साहब, ठीक है, आपकी ही बात मानी। जब आपकी उम्र तीन-चार बरस की रही होगी, आपकी अम्मा जी आपको बिना आसन की सुथनियाँ पहनाती होंगी, हाजत-रफा का संकट आ पड़ने पर उससे आप को सुविधा रहती होगी, आजकल भी उसी तरह का पायजामा आपको पहनाया जाय ?"

हंसी का प्रवाह पलट गया। गांधीवादी सज्जन बोले—"इस प्रकार का अश्लील मजाक आपको सभा में नहीं करना चाहिए !" यह जान कर कि मज़ाक अश्लील था, सोने की जंजीर पहने सज्जन बिगड़ने लगे और इस बात के लिये तैयार हो गये कि अबकी इतिहासज्ञ ज़ुबान हिलायें तो वे उन्हें खिड़की की राह सड़क पर फेंक देंगे। दार्शनिक और चश्माधारी सज्जन के बीच-बचाव करने से बड़ी कठिनता से वे शांत हुए तो इतिहासज्ञ को अपनी बात कहने का मौका मिला और उन्होंने कहा—

"मनुष्य का जीवन सम्पन्न बनाने के लिए आवश्यकता है कि पैदावार अधिक से अधिक हो। पैदावार अधिक करने के लिए परिश्रम की आवश्यकता होती है। मनुष्य सदा से परिश्रम करने के साधन या औजार बनाने का प्रयत्न करता आया है इसलिए उसने वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ने के बजाय लाठी से या ढेला फेंक कर फल तोड़ने का उपाय निकाला। जिस वस्तु की सहायता से मनुष्य के परिश्रम का फल बढ़ जाय उसे हथियार या औजार कहते हैं। पशुओं को भी मनुष्य हथियार या औजार के तौर पर ही काम में लाता रहा है और अब भी लाता है। पशु दूध पैदा करने, सवारी करने और बोझ ढोने की मशीन है। इसी प्रकार गुलाम कहलाने वाले मनुष्यों को हथियार ही समझा जाता था। उन्हें बोलते हथियार या 'टाकिंगटूल' कहा जाता था। उस समय के मालिक मजदूर से मजदूरी या नौकरी पर काम करवाने की अपेक्षा खरीदे हुए या किसी प्रकार गुलाम बनाये हुए आदमी से काम करवाना और उसका पेट भरकर उसे जीवित रखना लाभदायक समझते थे। इसलिये उस समय गुलामी की प्रथा का उपयोग था। हथियारों में उन्नति होते जाने से मनुष्य के परिश्रम का फल अधिक बढ़ने लगा। जिस काम के लिये पहले

सौ आदमियों की आवश्यकता थी, उसी के लिए दस-बीस आदमी काफ़ी होने लगे तो मालिकों के लिये गुलामों की सेनायें पालना लाभदायक न रहा। दूसरी ओर व्यापारियों को अपने कल-कारखानों में मजदूरों की आवश्यकता होने लगी। इसी रूप में गुलामों की जगह जरूरत होने लगी मजदूरों की और गुलाम स्वतन्त्र बनकर मजदूर हो गये।"

"इस किस्से से इस समय क्या मतलब ?"—चश्माधारी सज्जन ने टोक-कर पूछा, "प्रश्न तो यह है कि समानता........"

"आप सुनिये तो"—इतिहासज्ञ फिर बोले, "मतलब कहने का यह है कि मशीन की उन्नति से मनुष्य के श्रम का फल बढ़ जाता है, पैदावार बढ़ जाती है, सब लोगों के जीवन का स्तर ऊँचा हो जाता है, समाज में गुलामी का अन्त हो जाता है, सभ्यता की उन्नति होती है।"

इन्हें टोक दिया गांधीवादी सज्जन ने। अपने सिर की टोपी पंखे की तरह हिलाते हुए वे बोले—"सभ्यता की उन्नति इसे आप नहीं कह सकते ! कला-कौशल की उन्नति आप बेशक कह लीजिये !"

इनका उत्तर दिया दार्शनिक ने—"क्यों साहब, इसे सभ्यता की उन्नति कैसे नहीं कहियेगा ? कला-कौशल की उन्नति क्या मनुष्य की सभ्यता की उन्नति नहीं है ? उस समय की याद कीजिये, जब मनुष्य हवा के झोंके, आंधी और जल की मामूली बौछार से अपनी रक्षा न कर सकता था। दस कोस परे की भूमि उसके लिये भयावना, अज्ञात देश थी। तीन मन का बोझ उठा कर ले जाना उसके सामर्थ्य के बाहर की बात थी और आज वह दस हजार मील से बैठकर बात करता है, सैकड़ों मन बोझ लेकर हवा में उड़ता है, जल को स्थल और स्थल को जल बना देता है.....।"

गांधीवादी सज्जन बोले—"परन्तु मनुष्य की इस बढ़ी हुई आसुरी शक्ति को क्या सभ्यता कहा जायगा ? आपकी इस सभ्यता या शैतानी शक्ति का ही यह परिणाम है कि मनुष्य आकाश मे चढ़कर एक दम गिरा देता है और सैकड़ों पुरुष, स्त्रियां और बाल-बच्चे बिलबिलाकर मर जाते हैं। आपकी इस सभ्यता और आसुरी शक्ति द्वारा लाभ उठाने की इच्छा का ही परिणाम है कि ध्वंसक तोपें और हवाई जहाज लेकर एक देश दूसरे देश पर आक्रमण

करता है । यह पूंजीवाद और साम्राज्यवाद जिनके नाश के नारे आप लगाते हैं, मशीन की इसी आसुरी शक्ति का परिणाम है । इससे छुटकारा पाये बिना मनुष्य का कल्याण नही । हमें उस सभ्यता की आवश्यकता है जिसमें मनुष्य-मनुष्य में सद्भाव हो । मनुष्य-मनुष्य की सेवा करे । उनमें ईर्षा और वैर-भाव न हो !"

दार्शनिक के घुटने को दबाकर बहस में आगे बढ़ने के लिए इतिहासज्ञ दूसरे हाथ से चुटकी का संकेत करते हुए बोले—"एक अर्ज है·······मनुष्य की आसुरी शक्ति की जड़ है उसका दिमाग और यह दो हाथ । अगर इस दिमाग को पत्थर से कुचल दीजिये और इन दोनों हाथों को काटकर फेंक दीजिये तो आसुरी शक्ति समाप्त हो जाय !"

"क्या मतलब·······?"—विस्मय से आँखें फैलाकर गांधीवादी सज्जन ने पूछा ।

"मतलब यह कि जिस हाथ से आप चरखा कातने का पुण्य-कार्य करते हैं"—इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया, "उसी हाथ से उठाकर शराब भी पी जाती है । जिस हाथ से सींक जलाकर किसी के छप्पर में आग लगाई जाती है, वही हाथ पानी भरी बाल्टी उठा आग बुझा छप्पर को बचा भी सकता हैं । मतलब यह है कि मनुष्य की शक्ति बढ़ जाना भय और संकट का कारण नहीं होना चाहिये, मनुष्य की वह शक्ति जो विनाश का कार्य कर रही है, उसकी रक्षा और विकास का कार्य भी कर सकती है बल्कि इतिहास बताता है वह ऐसा ही करती रही है । मनुष्य में शक्ति और सामर्थ्य होने से ही उसके सद्भाव और सेवाभाव का भी मूल्य है, उसकी न्याय-बुद्धि का मूल्य है । उसके असमर्थ और निःशक्त हो जाने से उसकी सद्भावना और न्याय-प्रियता का मूल्य क्या ? जैसे भारतवासियों की अहिंसा·······?"

एक और सज्जन बोले—"देखिये साहब, इस बात से तो इनकार नहीं किया जा सकता कि मशीन, पूंजीपति की शक्ति बढ़ा उसे शोषण करने का अवसर देती है ?"

दार्शनिक बोले—"साहब, शोषण मशीन नहीं करती । शोषण करती है व्यवस्था ! जिस समय मशीन न थी, गुलामों का शोषण होता था । आज भी इस देश में ज़मींदार भूमि को अपनी सम्पत्ति बना लगान और बेगार

द्वारा और सूदखोर बनिये और खान सूद द्वारा ग़रीबों का शोषण करते हैं, उसमें मशीन की जरूरत नहीं पड़ती है। इस शोषण का मुकाबिला मशीन का शोषण भी नहीं कर सकता। शोषण तो होता है इस कारण कि जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं को पैदा करने और प्राप्त करने के साधन एक छोटी-सी श्रेणी के हाथ में आ गये हैं। यह लोग साधनहीन लोगों को अपना पेट भरने के लिये उन साधनों का व्यवहार उसी हालत में करने का अवसर देते हैं जब कि साधनहीन लोग इस बात के लिये राजी हों कि साधनों से परिश्रम करने पर पैदावार का बड़ा भाग मालिक को ही दे देंगे। दूसरे का परिश्रम चूसना ही शोषण है।"

"बस यही तो हमारा साम्यवाद कहता है।"—गांधीवादी सज्जन ने टोका, "और इसका उपाय यह है कि पैदावार के साधन इतने बड़े-बड़े न हों कि किसी को उनसे वश में किया जा सके। वे छोटे-छोटे हों जैसे चर्खा या घरेलू उद्योग-धन्दे के औज़ार! जिससे यह सम्भव ही न हो कि उद्योग-धन्दे और व्यापार एक छोटी-सी श्रेणी के हाथ में इकट्ठे हो सकें। सब लोग अपनी-अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ बनायें। फिर शोषण कैसे होगा? अहिंसा का यही मार्ग है।"

इतिहासज्ञ फिर बोल उठे—"देखिये आप फिर वैसी ही बात करने लगे कि गाँव में आग लग जाने का भय है इसलिये कभी आग ही न जलाई जाय। इतना आप नहीं सोचते कि पैदावार के बड़े-बड़े साधन यह मशीनें आकाश से नहीं टपक पड़ीं। कोई अलादीन का चिराग़ रगड़ देने से भी वे पैदा नहीं हो गईं। उन्हें बनाया तो मनुष्य ने ही है? बनाया क्यों? इसलिये कि मेहनत और पैदावार के साधारण उपायों से उनकी आवश्यकतायें पूरी न होती थीं। उसने मशीन द्वारा पैदावार को बढ़ाने का उपाय निकाला। मनुष्य-समाज के पीढ़ी-दरपीढ़ी हजारों वर्ष के अनुभव, खोज और प्रयत्न का यह फल है कि वह प्रकृति के सामने असहाय और विवश नहीं बल्कि जल, वायु, अग्नि, आकाश अदि प्राकृतिक शक्तियों पर राज कर रहा है, उनका उपयोग मनुष्य-समाज लाभ के लिये कर सकता है.......।"

"लाभ हो तब न?... ....हम तो देखते हैं कि सब ओर हानि ही हानि है!"—सोने की जंजीर पहने सज्जन हाथ हिलाकर बोले।

"पहला लाभ तो यह है"—दार्शनिक ने उत्तर दिया, "आप यहाँ मजे में लू और धूल से बचकर बिजली के पंखे के नीचे बैठे बरफ़ का ठण्डा शरबत पी मशीन को गाली दे रहे हैं। मशीन का विकास न होता तो लू के डर के मारे आप झोंपड़ियों में या किसी भिटे में सिर छिपाते फिरते या ईंटों से भरी भैंसागाड़ी हांकते फिरते। गाड़ी रूपी मशीन भी न होती तो ईंटें सिर पर ढोते! उस समय आप प्राण बचाते या उपदेश और तर्क करते? उस समय हिंसा-अहिंसा और न्याय-अन्याय का चर्चा करने की बात आपको न सूझती, तब मशीन को शैतानी शक्ति बताने वाले महात्मा लोग लाउडस्पीकर की मशीन द्वारा मशीन के विरुद्ध प्रचार न कर पाते! जो लोग हिंसा से हिंसा को मिटाना उचित नहीं समझते, वे मशीन की सहायता से मशीन का विरोध कैसे करते हैं?"

"नहीं साहब"—गांधीवादी सज्जन ने कहा, "महात्माजी तो अपने विचारों के प्रचार में मशीन की सहायता लेना उचित नहीं समझते। * उनका तो कहना है, मशीन की सहायता से विचारों का प्रचार करने से उनमें पवित्रता नहीं रहती और उनकी शक्ति कम हो जाती है।"

"तो साहब मशीन का उपयोग प्रचार में वे न किया करें, कोई जबरदस्ती उनसे थोड़े ही करता है?"—कामरेड ने टोका।

कामरेड की बात की उपेक्षा कर दार्शनिक बोले—"महात्मा गांधी उचित चाहे जो कुछ समझते हों, परन्तु इस वास्तविकता से इनकार कोई नहीं कर सकता कि मशीन मनुष्य जीवन का अनिवार्य और आवश्यक अंग बन गई है। मनुष्य बने रहना हो तो उसे छोड़ा नहीं जा सकता बल्कि मनुष्य का मनुष्यत्व ही मशीन में है।"

"मनुष्य का मनुष्यत्व मशीन में है?"—अत्यन्त आश्चर्य से आंखें फाड़कर गांधीवादी सज्जन ने विस्मय प्रकट किया—मनुष्य का मनुष्यत्व उसके गुणों में है, उसके धर्म में है या जड़ मशीन में?"

सोने की जंजीर पहने सज्जन ने माथे पर हाथ मारकर कहा—"धन्य

---

*यह लेख गांधी जी की मृत्यु से पूर्व १९४१ में लिखा गया था।

हैं आप ! मार्क्स और लेनिन के चेले ! मनुष्य का मनुष्यत्व आप लोहे पत्थर में बताते हैं ! मनुष्य है क्या साहब ?"

आस-पास बैठे बहस को सुनने वाले लोगों के चेहरे पर भी अविश्वास की मुस्कान झलकने लगी, यहां तक कि कामरेड भी दार्शनिक की ओर विस्मय से देखने लगे कि यह क्या नई बात उनके वकील कह गये।

दार्शनिक बिलकुल स्थिर बने रहे। दोनों हाथों से श्रोताओं को धैर्य से बात सुनने का संकेत कर उन्होंने कहा --"मनुष्य केवल जीव है, मनुष्यत्व उसका है मशीन में ! दूसरे जीवों में और मनुष्य में अन्तर केवल यह है कि मनुष्य के पास मशीन है। शेष किस बात में अन्तर है ? प्रकृति का कौन काम आहार, निद्रा, मैथुन आदि पशु नहीं करता ? बताइये ? आप कहते हैं, पशु में धर्म नहीं ? आप कैसे कह सकते हैं पशु में धर्म नहीं ? हो सकता है, पशु पूजा भी करते हों ! आप उनकी भाषा नहीं समझ पाते इसलिए कुछ कह नहीं सकते। हो सकता है, वे शान्त बैठकर आर्य-समाजियों की तरह ईश्वर का ध्यान भी करते हों या ज़ोर से रम्भाते समय अल्लाहो अकबर की अज़ां देते हों ? आप कहेंगे—वे पूजा नहीं करते क्योंकि उनके यहां मंदिर नहीं। यह कमी उनके यहां केवल इसलिये है कि मन्दिर बनाने के लिये उनके पास औज़ार, हथियार या मशीन नहीं। पशु औज़ार और मशीन बना नहीं सकते, मनुष्य बना सकता है इसीलिये पशु, पशु है और मनुष्य, मनुष्य है।"

दार्शनिक ने देखा, लोग उनकी बात से चकित हो रहे हैं जैसे कोई जादू का खेल उन्होंने दिखा दिया हो। अपनी बात की ओर श्रोताओं का ध्यान देख वे और कहने लगे—"ऋषियों और महात्माओं ने मनुष्यत्व की जो पहचान बताई हैं, वह आपने सुनी होगी। अगर एतराज न हो तो मार्क्स की भी बात सुन लीजिये। मार्क्स कहता है—"पशु अपने निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों को प्रकृति में जैसा पाते हैं, उनसे निर्वाह करते हैं; जैसी परिस्थितियां उनके चारों ओर होती हैं, उन्हीं में निर्वाह करते हैं। वे प्रकृति के आधीन रहते हैं। मनुष्य अपने निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों को प्रकृति से स्वयम उत्पन्न करता है। वह अपनी परिस्थितियों में बहुत कुछ परिवर्तन कर उन्हें अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बना लेता है। प्रकृति से अपनी आवश्यकता की वस्तुयें पैदा करने का काम और परिस्थितियों को अपनी आवश्यकता के

अनुकूल ढालने का काम किया जाता है औजारों और मशीन से। ऐसी अवस्था में आप मशीन को ही मनुष्यत्व का लक्षण मानेंगे या नहीं ?"

चश्माधारी सज्जन ध्यान से दार्शनिक की बात सुन रहे थे। सिर हिलाकर बोले—"बात है तो सोचने लायक !" इनकी बात समाप्त होने की परवाह न कर सोने की जंजीर पहने सज्जन बोले, "लेकिन प्रकृति को तो परमेश्वर ही बनाता है !"

"क्या सुबूत कि परमेश्वर बनाता है ?"—कामरेड ने गर्दन ऊँची कर पूछ डाला।

"कोई भी बनाये प्रकृति को; ईश्वर बनाये या शैतान"—दार्शनिक ने कुछ ताव में आकर कहा, "प्रकृति तो है ही। इसमें पशु भी हैं और मनुष्य भी। हमें तो देखना है मनुष्यत्व किस बात में है ? किस राह चलकर मनुष्य अधिक सुखी और सशक्त बन सकता है और विकास कर सकता है ? परमेश्वर को आप बीच में क्यों लाते हैं ?"

गांधीवादी सज्जन के एक समर्थक बोले—"परन्तु परमेश्वर की इच्छा के बिना तो कुछ हो नहीं सकता !"

"हां तो यह सब अन्याय, अत्याचार और शोषण भी परमेश्वर की ही इच्छा से होता हो तो हमें उसकी कोई जरूरत नहीं। हम ईश्वर विश्वास की दिमागी गुलामी को मानने के लिये हरगिज तैयार नहीं !"—हवा में घूंसा चलाते हुए कामरेड ने फिर कहा।

कृपाकर चुप रहने के लिए उनकी ओर इशारा कर दार्शनिक ने फिर कहना शुरू किया—"यदि ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता तो मशीन भी उसकी इच्छा से ही बनी और उसका इतना विकास हुआ। आपके विचार के अनुसार यदि भगवान न चाहते तो मशीन का विकास न होता ? भगवान न मशीन में मनुष्य का हित समझा तभी तो उसमें रुकावट न डाली परन्तु गांधीवाद, का ख्याल है कि जैसे—स्वर्ग का सुख भोगते हुए आदमी और हव्वा ने शैतान के बहकाने से भगवान की इच्छा के विरुद्ध गेहूं का फल खा लिया और वह फल खाते ही आदम और हव्वा को ज्ञान हो गया कि वे तो नंगे हैं, लज्जा से वे अपने शरीर को छिपाने लगे। ज्ञान प्राप्त करने के इस

अपराध के फल स्वरूप वे स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गिरे और अब उनकी सन्तान मनुष्य-समाज के रूप में सब संकट भोग रही है और भोगती रहेगी। प्रलय काल से * उसी प्रकार जंगलीपन के स्वर्ग की सुख-शांति में रहते हुए मनुष्य समाज ने जब मशीन के रूप में ज्ञान का फल चख लिया तो इस अपराध के फलस्वरूप आपके विचार में विनाशकारी सभ्यता ने उसे आ घेरा !"

दार्शनिक की बात से चारों ओर फूट पड़ी हँसी की चिन्ता न कर गांधीवादी सज्जन ने कहा—"मनुष्य की सभ्यता के आरम्भ से तो यह मशीनें इस रूप में चली नहीं आ रहीं। इन्हें तो मनुष्य ने अपना लोभ पूरा करने के लिए ही बनाया है इसमें ईश्वर की इच्छा और रज़ामन्दी का सवाल ?"

"अरे भाई, ईश्वर आंखें खोले देख रहे थे कि मनुष्य क्या-क्या कर रहा है, अपनी शक्ति को किस प्रकार बढ़ा रहा है।"—दार्शनिक ने पूछा, "पहले ज़माने में तपस्या द्वारा ऋषि लोग अपनी शक्ति बढ़ाने लगते थे तो देवता झटपट उर्वशी, रम्भा, मेनका किसी न किसी सुन्दरी को भेजकर उनकी तपस्या भंग करा देते थे कि कहीं मनुष्य भी देवताओं के समान सशक्त न हो जायें। मशीन द्वारा मनुष्य की शक्ति बढ़ाने का तो कोई विरोध देवताओं या भगवान की ओर से नहीं हुआ। तब इसे भगवान की इच्छा और आज्ञा के विरुद्ध क्यों कर समझा जाय ?"

एक सज्जन जो अब तक बिना किसी उत्साह के बहस को सुने जा रहे थे, बोल पड़े—"यार इस ज़माने में भी अप्सरायें मशीनें तोड़ने आयें तो मज़ा तो खूब रहे !"

"आने दो सालियों को ! आयें तो उन्हें थियेटर की स्टेज पर नचाया जायगा और सब लोग तमाशा देखेंगे।" कामरेड उत्साहित होकर बोले।

"क्या बकते हो जी ?"—दो-तीन महाशयों ने कामरेड को धमकाया। जिन सज्जन के चुनाव के लिये यह सब समारोह हो रहा था, उनके हित-चिन्तकों ने किसी को भी नाराज़ न करने के ख्याल से मामला बढ़ने से पहले शान्त करा दिया।

इस विघ्न की कुछ परवाह न कर गांधीवादी सज्जन ने अत्यन्त गंभीरता

* मनुष्य की पैदाइश के विषय में बाइबिल की कथा।

से कहा—"मशीन की इस सत्यानाशी सभ्यता का फल मनुष्य को मिल कैसे नहीं रहा ? यह युद्ध में सौ-सौ मील तक मार करने वाली तोपें, आकाश से बम गिराकर लाखों मनुष्यों का संहार करने वाले हवाईजहाज, यह सब इस सभ्यता का दण्ड ही तो हैं। जब यह विध्वंसक मशीनें न थीं, मनुष्य का संहार इस प्रकार न होता था। यह युद्ध इस सभ्यता का दण्ड नहीं तो क्या है ? इसे सभ्यता नहीं असभ्यता ही कहना चाहिए ?"

इन्हें टोक कर इतिहासज्ञ बोले—

"क्यों साहब, यदि चर्खे के तकले से सूत न कातकर लोगों की आंखें फोड़ी जायें तो दोष किसे दीजियेगा ? या समझिये हल को पृथ्वी पर न चलाकर उसे मनुष्य के कलेजे पर चलाया जाय तो हल को दोष दीजियेगा ? मशीन और साइन्स की शक्ति से बनी गैस को आप मनुष्य के लिये खाना पकाने, रोशनी करने, बोझ ढोने के काम में न ला उससे मनुष्यों की हत्या कीजिये तो क्या दोष मशीन, साइन्स या गैस का है ? डाइनामाइट से पहाड़ तोड़कर मनुष्य के लिये राह बनाने की अपेक्षा यदि उसे आप मनुष्यों की पीठ पर चलाने लगें ! दोष डाइनामाइट का नहीं आपकी बुद्धि का होगा ?"

गम्भीर स्वर में गांधीवादी सज्जन ने कहा—"मनुष्य ऐसी सत्यानाशी वस्तुओं को बढ़ाये क्यों ?"

"यह भी आपने एक ही कही"—इतिहासज्ञ ने दोनों हाथ हिलाकर कहा—"जब से मनुष्य ने हथियार बनाये हैं, सभी हत्याएँ उसने बर्छे, तलवार गोली के रूप में लोहे से की हैं। आप कहेंगे मनुष्य लोहा न बनाता तो हिंसा न होती। परन्तु महात्मा जी, लोहा न होता तो चर्खा और तकली भी न बनतीं और सूत कातकर आत्मिक उन्नति का मार्ग भी न खुलता। जानते हैं आप यह लोहा ही मशीन का बीज था......"

दार्शनिक कहने लगे—"युद्धों में थोड़े या बहुत आदमी मरते हैं यह तो माना जायगा परन्तु युद्धों से सदा सभ्यता का नाश ही हुआ है, यह नहीं माना जा सकता। पिछले युद्ध में क्या नहीं हुआ ? परन्तु उसके बाद मशीन का और भी अधिक विकास हुआ। इस युद्ध के बाद भी वही होगा ! युद्ध की संकटमय परिस्थिति मनुष्य-समाज की व्यवस्था के अन्तर-विरोधों के कारण पैदा हो

जाती है। संकट से अपनी रक्षा के लिये मनुष्य को अपनी शक्ति और अधिक बढ़ानी पड़ती है।"

"आपका मतलब है युद्ध होने चाहिए?"—चश्माधारी सज्जन ने विस्मय से पूछा।

"नहीं यह बात नहीं"—दार्शनिक ने उत्तर दिया, "युद्ध न हों तो मनुष्य समाज सैकड़ों गुना अधिक सम्पन्न और सुखी हो जाय। परन्तु युद्ध मशीन की वजह से नहीं होते। युद्ध होते हैं मनुष्य-समाज की गलत व्यवस्था की वजह से। मशीन का दोष इतना ही है कि वह मनुष्य समाज की शक्ति को सैकड़ों गुना बढ़ाकर मनुष्य-समाज के विकास की रफ्तार को तेज कर देती है और होने वाले युद्धों को अधिक भयंकर रूप दे देती है। इसके साथ ही मनुष्य का बहुत कल्याण करने की शक्ति भी तो उस में है। हवाई जहाजों का विकास पिछले युद्ध में मनुष्यों का संहार करने के लिये हुआ था परन्तु वही हवाई जहाज सवारी और डाक का काम देने लगे। रूस में वे खेती और स्वास्थ्य रक्षा की सार्वजनिक सेवा के काम आने लगे। जब तक मनुष्य का विकास होगा, मशीन का विकास होगा।"

इतनी देर तक दार्शनिक के बोलते रहने से इतिहासज्ञ चुप बैठे व्याकुल होने लगे थे। सहसा वे बोल उठे—"हम बतायें साहब, मशीन की विनाशकारी सभ्यता का नाश किस तरह होगा?"—गांधीवादी और सोने की जंजीर पहने सज्जन की ओर हाथ जोड़ उन्होंने कहा, "यदि गुस्ताखी मुआफ हो तो!" और बोले, "देखिये गीता में लिखा है—जब-जब धर्म का नाश होता है और पाप की बढ़ती होती है, सन्तों की रक्षा के लिये और दुष्टों का नाश करने के लिए भगवान अवतार लेते हैं। सो अब मशीन रूपी पाप बहुत काफी बढ़ गया है और महात्मा गांधी ने अवतार धारण किया है उसका नाश करने के लिए। अब मशीन का नाश होकर पशु-वंश का राज होगा। सब प्रकार की मशीनों, औजारों और हथियारों का नाश होकर सब काम हाथ-पांव से किये जायेंगे। मनुष्य पाप छोड़ पशु धर्म ग्रहण कर पृथ्वी पर उगी घास को चरेंगे और तालाब में मुंह लगाकर जल पियेंगे। इससे पृथ्वी पर धर्म, समता और शांति हो जायगी।"

सब लोग कहकहा लगाकर हंस पड़े। उस हंसी से विचलित न होकर

गांधीवादी सज्जन ने कहा—"गांधीवादी सभी प्रकार की मशीनों, औजारों और हथियारों का विरोध नहीं करता। गांधीवाद विरोध करता है केवल बड़ी-बड़ी मशीनों का जैसे मिलें और कारखाने आदि। जिनसे उद्योग-धन्धे कुछ इने-गिने व्यक्तियों के हाथ में आकर केन्द्रित हो जाते हैं, और विषमता या बेकारी फैलती है। यों तो ग्रामोद्योग और घरेलू धन्धों में भी औजार और हथियार काम आते हैं; चरखा भी तो एक मशीन ही है। आपके कहे मुताबिक तो कुल्हाड़ी, खुरपी और लाठी भी मनुष्य की शक्ति को बढ़ाने वाली मशीनें हैं। गांधीवाद उनका विरोध नहीं करता।"

"यही तो जनाब विचित्र बात है कि गांधीवाद मशीन का विरोध नहीं भी करता और करता भी है।" दार्शनिक बोले—"इसका मतलब यह होता है कि एक खास हद तक या दर्जे तक, जब तक कि मशीन की शक्ति उसके विचार में बहुत न बढ़ जाय, गांधीवाद उसे अच्छा समझता है, उस सीमा के आगे नहीं। गांधीवाद के अनुसार मनुष्य को एक सीमा तक ही विकास करना चाहिए। लेकिन यह सीमा गांधीवाद किस मतलब से निश्चित करता है? मनुष्य या संसार की कोई भी वस्तु किसी स्थान पर पहुँचकर भी निश्चल, स्थिर या गतिहीन नहीं हो सकती। गति जीवन का गुण है। गति तो होगी ही। यदि आगे की ओर नहीं होगी तो पीछे की ओर होने लगेगी। मनुष्य समाज विकास नहीं करेगा तो उसका विनाश और पतन होने लगेगा। मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य बढ़ना ही सामाजिक रूप से उसका विकास है।"

"हां साहब"—चश्माधारी सज्जन गांधीवादी सज्जन की ओर देख कर बोले, "यह बात समझ में नहीं आती कि एक खास हद तक आप मशीन को उपयोगी समझते हैं और बाद में हानिकारक। सिद्धान्त तो एक ही है, मशीन हो या औजार, वह मनुष्य द्वारा बनाया मनुष्य की सहायता का उपाय ही तो है? उसे जितना बढ़ाया जाय उससे मनुष्य समाज का कल्याण ही होना चाहिए!"

गांधीवादी सज्जन ने अहिंसात्मक रूप से कुछ उत्तेजित होकर कहा—"अजी हाथ कंगन को आरसी क्या? देखते नहीं हैं आप? इन मिलों और कारखानों में सैकड़ों आदमियों का काम मशीन की सहायता से एक आदमी करता है? उससे जनता का धन खिंच-खिंच कर कुछ थोड़े से आदमियों के

हाथ में इकट्ठा हो जाता है । दूसरे लोग साधन-हीन और कंगाल हो जाते हैं । जब मशीन से दस आदमी का काम एक आदमी करेगा तो बेकारी हुए बिना नहीं रह सकती । मशीन बहुत सा काम कर डालेगी तो शेष समय लोग बेकार रहेंगे और खुराफात करेंगे, पाप और अनाचार फैलेगा । यह सब कुछ हमें प्रतिदिन समाज में दिखाई दे रहा है । इसमें समझने न समझने की बात क्या है ? ऐसी अवस्था में समता और शान्ति हो कैसे सकती है ?"

"यदि मशीन मनुष्य की शक्ति बढ़ा देती है तो इससे मनुष्य के लिए भयभीत होने का कोई कारण नहीं ।"—इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले, "जरूरत इस बात की है कि मनुष्य को अपनी बढ़ी हुई शक्ति के उपयोग का अवसर मिले । यदि मशीन की सहायता से एक आदमी दस आदमियों का काम कर सकता है तो नौ आदमियों को बेकार और भूखा रहने की जरूरत नहीं । बचे हुए नौ आदमी दूसरे नौ काम कर सकते हैं । आप यह भी तो देखते हैं कि समाज के सभी लोगों की सभी आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं और फिर भी आदमी बेकार बने रहते हैं ? क्यों न समाज में प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण हो ? क्या वजह है जिन वस्तुओं का व्यवहार आज दिन केवल बड़े लोग करते हैं वे इस मात्रा में पैदा न की जायं कि सभी लोगों के लिए काफी हों ? इस प्रकार वस्तुओं का बंटवारा होने पर सभी चीजों की सैकड़ों गुना अधिक पैदावार करना जरूरी होगा । आज जो आपको अधिक पैदावार हो जाने के कारण मालगोदाम और कोठियां भरी दिखाई देती हैं, यह सब धोखा है । इन वस्तुओं की फालतू पैदावार तो तब समझा जाय जब कि समाज के जरूरत मन्दों की जरूरत पूरी करने के बाद भी यह सामान बचा रहे । आज दिन यह सामान फालतू पैदा हो गया इसलिये जान पड़ता है क्योंकि समान जरूरत मन्दों के उपयोग के लिये नहीं, बल्कि मुनाफे पर बिक्री के लिये पैदा किया जाता है । बिक्री हो नहीं पाती क्यों कि मुनाफा कमाने वाले पूंजीपति अपना मुनाफा बढ़ाने के लिये मेहनत करने वाले मजदूरों को कम-से-कम पैसा समान तैयार करने की मेहनत में देते हैं । जब मेहनत करने वाला अपनी मेहनत का पूरा मूल्य नहीं पायेगा तो आवश्यक समान को खरीदेगा कैसे ? ऐसी हालत में बिक्री न होने की शिकायत कर दूसरे मेहनत करने वालों को भी काम से बर्खास्त कर दिया जाता है । मतलब यह कि खरीद सकने वालों की तादाद घटती जाती है परन्तु पैदा करने की ताकत

मशीन में उतनी ही है या और बढ़ती जाती है। पैदावार को खरीद सकने की ताक़त को तो पूंजीपति मेहनत करने वालों से छीनकर अपनी जेब में भर लेता है। ज़रूरत इस बात की नहीं कि मशीन की पैदावार घटाई जाय। इससे खरीदने वाले की ताक़त नहीं बढ़ जायेगी। जब पैदावार ही कम हो जायगी तो वह खरीदेगा क्या? इससे भूख और कंगाली नहीं मिटेगी। ज़रूरत है इस बात की कि मेहनत करने वाले को मेहनत का पूरा फल मिले ताकि स्वयम् तैयार किये समान को या उसके बराबर मूल्य के पदार्थ को वह खरीद-कर खर्च कर सके।

"आप एक क्षण के लिये मान ही लीजिये मशीन द्वारा कम मेहनत से अधिक पैदावार हो सकती है। ऐसी अवस्था में क्या ज़रूरत कि मेहनत करने वालों को दस या बारह घण्टे काम पर जोता जाय? मेहनत करने वालों से केवल छः घण्टा, चार घण्टा काम कराया जाय। शेष समय वे खेल-कूद, पढ़ने-लिखने में खर्चकर इन्सान होने का कुछ सुख उठायें। आप जैसे सज्जन चाहें तो आध्यात्मिक चर्चाकर, समाधि लगाकर बैठ सकते हैं। मशीन की शक्ति तो मनुष्य की सेवक है। प्रश्न है कि उसे किस उद्देश्य से किस काम में लगाया जाता है।"

इतिहासज्ञ थक कर चुप होना ही चाहते थे कि एक और साहब जो कुछ क़ारोबारी ढंग के जान पड़ते थ, बोल उठे—"साहब यों तो कांग्रेस की बात ठीक ही है परन्तु यह समझ में नहीं आता कि मिलों और कारखानों में दस-बारह आना मज़दूरी पा सकने वाले मज़दूरों को छः पैसे-दो आने के चर्खा कातने के कारोबार करने का उपदेश क्यों दिया जाता है? लोग अगर छः पैसे-दो आने कमाई के रोजगारों में लग जायेंगे तो साहब, देश का रहा-सहा रोजगार भी चौपट हो जायगा। अरे साहब लोगों को कमाई ही नहीं होगी तो कोई खरीदेगा काहे से और कोई पैदा क्या करेगा?"

इनकी बात से एक और सज्जन का साहस बढ़ा। वे बोले—"अगर लोग सचमुच ही मिलों और कारखानों को छोड़कर ग्रामोद्योग धन्धे पर ही आ टिकें तो होगा क्या? सैकड़ों रोजगार बन्द हो जायंगे। यह समझ लीजिये कि ४०-५० लाख मज़दूर बेकार हो जायंगे और अपने गांवों को दौड़ेंगे। गांव में यह लोग करेंगे क्या? वहां कौन धन्धा है? रेल का पहिया बनायेंगे,

लोहे के गर्डर ढालेंगे या शक्कर और कपड़े की मिल चलायेंगे ? खायेंगे कहाँ से ? खेती करने को कहो तो अभी फिलहाल ही गांवों में खेती की ज़मीन नहीं मिलती। ज़मीन के लिये वह मारोमार है कि लगान पर लगान चढ़ रहे हैं। अरे भाई किसान अपनी जमीन से पेट भरने लायक अनाज तो पैदा कर नहीं पाता। चाहिए तो यह कि नये-नये कारोबार खुलें ! ये कहते हैं गांवों को चलो !"

सब ओर से शंकायें उठती देख गांधीवादी सज्जन ने कहा—"यह तो हम कहते नहीं कि सब मिलें एकदम बन्द कर दी जांय। मिले भी चलें और बेकार लोग घरेलू धन्धे भी करें। मशीन को और आगे बढ़ाना ठीक नहीं बल्कि हो सके तो मिलों के कारोबार को छोटे उद्योग-धन्धों का रूप देते जाना चाहिये !"

कारोबारी सज्जन ने फिर शंका की—"जनाब यह हो नहीं सकता। घण्टे भर में हज़ारों कीलें बना देने वाली मशीन के मुकाबिले में आप दिन भर खुट्ट-खुट्ट करके चालीस कीलें पीट लेंगे तो वह बाजार में ठहर नहीं सकतीं। आप चालीस कीलों के लिये मांगेंगे आठ आने ! अरे कुछ तो पेट में डालियेगा? और मशीन वाला आठ आने में देगा दो सौ कील। दिन भर में वह बनायेगा दस हज़ार कील। उसे सौ कील पर इकन्नी मुनाफ़ा बहुत, कहिये ......?"

बहस में बिलकुल कारोबारी रंग आता देख इतिहासज्ञ बोले—"आप मशीन की मुसीबत का इलाज बताते हैं घरेलू उद्योग-धन्धे ? मानो मशीन से बढ़कर कोई नया आविष्कार कर रहे हों। घरेलू धन्धे तो पहले मौजूद थे ही, मशीन के सामने वे टिक न सके। जब घरेलू धन्धों के जमे-जमाये पैर मशीन के आगे उखड़ गये तो अब जब कि मशीन के पैर जम चुके हैं, घरेलू उद्योग-धन्धे कैसे स्थान पा सकते हैं ? आप ही बताइये पैदावार को बढ़ती के ढंग की ओर जाना चाहिए या घटती के ढंग की ओर ?"

गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"पैदावार का उद्देश्य तो मनुष्य समाज का कल्याण ही है न ? जब मशीनों के उपयोग से मनुष्य-समाज की अधिक संख्या का कल्याण न होकर दुख, अशान्ति, कलह और कंगाली ही होती है तो उसे चिपटाये रखने से क्या लाभ ? ऐसी अवस्था में हमें हाथ की दस्तकारी का ही सहारा लेना चाहिये ताकि अधिक संख्या का शोषण न हो सके। हमें

पूंजीपतियों, ज़मींदारों तथा पैदावार के दूसरे साधनों के मालिकों को समझाना चाहिए कि उनके पास जो सम्पत्ति है वह सर्वसाधारण जनता की है। उसका उपयोग निजी भोग के लिए करना पाप है। जब तक पूंजीपतियों और पैदावार के साधनों के मालिकों का हृदय परिवर्तन न हो जाय, शोषण और कंगाली को रोकने का एक ही उपाय है कि हाथ की दस्तकारी का उपयोग किया जाय। समता और साम्यवाद हो सकता है त्याग, सेवा और अहिंसा की भावना से। जनता के सेवक को चाहिये कि ग़रीबों की ही तरह रहकर उनकी सेवा करे।"

"क्यों साहब"—कामरेड ने पूछा, "अगर गरीब जनता की तरह कमर में अंगोछा लपेट कर हम भी रहने लगें तो इससे ग़रीबों को क्या लाभ? इससे जनता की कंगाली और ग़रीबी तो दूर हो नहीं जायगी। अगर सभी लोग ऐसे रहने लगेंगे तो वस्तुओं की मांग घटने से पैदावार और कम होगी और बेकारी अधिक फैलेगी! ग़रीबों की सहायता आप करना चाहते हैं तो जिस चीज की जरूरत उन्हें है, वह उन्हें दीजिए। आपके त्यागी या साधु बन जाने से ग़रीबों को लाभ?

"इस से गरीब को लाभ बेशक न हो"—इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया, "परन्तु त्याग करने वाले महात्मा का आदर तो बढ़ता है। उसका किया खरा-खोटा सब सही हो जाता है। आप जब कहते हैं कि पूंजीपतियों और जमीदारों के पास जमा धन और पैदावार के साधन उनके निजी उपयोग के लिए नहीं हैं, वे यदि इन्हें निजी उपयोग में खर्च करें तो पाप होगा, तो फिर क्या कारण कि आप यह साधन उनके कब्ज़े में रहने देकर समाज की हानि करें? क्यों न इन साधनों को उनसे लेकर इस प्रकार उपयोग में लाया जाय कि समाज के लिये पैदावार बढ़े और नये उद्योग-धन्धे चलें? मशीन से जब हमें लाभ हो सकता है तो हम उसे क्यों छोड़ें। कंगाली का इलाज हाथ की दस्तकारी नहीं। उससे तो मौजूदा शोषण से भी बुरी हालत हो जायगी! शोषण को रोकने और समता का उपाय त्याग द्वारा हाथ की दस्तकारी को अपनाना नहीं बल्कि समाजवाद है। समाजवाद का अर्थ सबको एक समान कंगाल और ग़रीब बना देना नहीं, जैसा कि आपके साम्यवाद का अर्थ है। समता का नाम लेकर आप जनता

को लुभाना चाहते हैं परन्तु सम्पत्ति पर समाज के अधिकार की बात सुनते ही आपको हिंसा दिखाई देने लगती है। समाजवाद का अर्थ है, सब लोगों को रोज़ी कमाने का समान अवसर हो और सब लोग अपने परिश्रम का पूरा फल पा सकें! यह तभी हो सकता है जब पैदावार के साधनों पर सभी व्यक्तियों को समान अधिकार हों, सबको समान अवसर हो, वे सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति हों। मशीन की बढ़ी हुई शक्ति उसे सामाजिकता की ओर ले जाती है।"

इतिहासज्ञ की बात को स्पष्ट करने के लिये दार्शनिक बोले—"मशीन से पैदावार का सरंजाम इतना विस्तृत और फैला हुआ होता है कि उसे एक व्यक्ति चला नहीं सकता। उसे सामूहिक रूप में या सामाजिक रूप में ही चलाना पड़ता है। मशीन से होने वाली पैदावार को भी एक ही व्यक्ति उपयोग मे नहीं ला सकता। ऐसी अवस्था में उसे एक व्यक्ति की सम्पत्ति बनाकर उसे उपयोग में लाते समय या उसकी पैदावार को खर्च करते समय, एक व्यक्ति की राय या मुनाफे का खयाल करना एक अस्वाभाविक सी बात है। जिस समय पैदावार के साधन एक व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाये जा सकते थे और उनकी पैदावार का मूल्य भी एक ही आदमी के निर्वाह लायक होता था, इन साधनों का एक व्यक्ति की सम्पत्ति होना स्वाभाविक था। परन्तु इस समय जब मशीन से पैदावार का काम सामाजिक रूप से होता है, उसकी पैदावार का खर्च भी सामाजिक रूप से होता है, उसे एक व्यक्ति की मिल्कियत में घुसेड़ने का प्रयत्न अस्वाभाविक है। इससे न तो मशीन ठीक से पैदावार कर सकेगी और न उसकी पैदावार का खर्च ही ठीक से हो सकेगा। फिर आप शिकायत करते हैं कि मशीनों के उपयोग से बेकारी होती है, विषमता आती है, आर्थिक संकट आता है; अरे भाई आयगा नहीं तो होगा क्या?

आप की सवारी मशीन की चाल तेज है। आप उसके पैरों में डाल दें व्यक्तिगत मिल्कियत का फन्दा और ऊपर से उसे भगाने के लिये लगायें हंटर, तो मुंह के बल गिरियेगा कि नहीं? इससे बचने का सीधा उपाय है, पैदावार के बड़े-बड़े साधनों को सामाजिक सम्पत्ति बना देना, सो आपको मंज़ूर नहीं। उसमें आपको हिंसा दिखाई देती है परन्तु शोषित होने वाली करोड़ों जनता

पर होने वाली हिंसा आपको दिखाई नहीं देती……।" दार्शनिक जोश में कहते चले जा रहे थे।

इन्हें टोक गांधीवादी सज्जन बोले—"आप चाहते हैं कि हिंसा का इलाज हिंसा से हो ? एक श्रेणी की हिंसा हटी तो दूसरी श्रेणी की हिंसा होने लगी। इससे लाभ ?"

इस प्रश्न से दार्शनिक उत्तेजित हो उठे—"व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रथा ही आप की दृष्टि में न्याय और अहिंसा है। इससे आपको इतना मोह है कि उसकी रक्षा के लिए आप मशीन द्वारा हो सकने वाले समाज के कल्याण और विकास को हाथ की दस्तकारी के नाम पर वलिदान कर देने के लिये तैयार हैं। मशीन का विरोध आप इसीलिये करते हैं कि मशीन का विकास, उसकी बढ़ी हुई शक्ति व्यक्तिगत मिल्कियत के दायरे में समा नहीं सकती। वह व्यक्तिगत अधिकार को सहन नहीं कर सकती। मशीन को चलाइये तो वह हजारों को हाथ देने के लिये पुकारती है और जब पैदावार करती है तो हजारों लाखों के लिए। वह हजारों-लाखों मजदूरों को एक साथ इकट्ठा कर एक दुर्दम शक्ति बना देती है। मशीन के उपयोग से व्यक्तिवाद के लिए स्थान नहीं रहता। वह समाजवाद का आधार है। मशीन की बहुत अधिक उन्नति हुए विना समाजवाद हो नहीं सकता। आप मशीन को तब तक पसन्द करते हैं जब तक कि वह चर्खे के रूप में एक व्यक्ति के कब्ज़े में रहने के लिए तैयार है। यह व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रणाली आपके रामराज्य और ठाकुरशाही सामाजिक व्यवस्था की जान है। समाज के विकास में इसे कुचले जाता देख आपका हृदय भय से हिंसा-हिंसा पुकार उठता है!"

अपनी इस वक्तृता का प्रभाव श्रोताओं पर जांचने के लिए दार्शनिक ने चुप होकर चारों ओर देखा। उनके यों चुप होने के अवसर का लाभ उठाकर इतिहासज्ञ बोल उठे—"भैया, इनकी हिंसा-अहिंसा का यह हाल है कि गौ सगी माता है, उनके दर्शन से पुण्य होता है, उनका दूध पीना हिंसा है। वकरी वेचारी सौतेली है। दूध पीना ही है तो उसका पीलो। सो समाज में हिंसा होनी ही है तो ठाकुरों, सेठों की न हो, वे दान पुण्य करते हैं, भगवान की दया से वे भगवान बने हैं, उसके प्यारे हैं। अपने पूर्व जन्म के पाप से गरीब रहने वाले लोगों की हिंसा होती है तो होने दो।"

सहसा सब लोगों को एक दरवाजे की ओर नजरें घुमाते देख इतिहासज्ञ ने देखा कि चुनाव के उम्मीदवार सज्जन हाथ में बहुत से कागज़ पत्र लिये प्रवेश कर रहे हैं।

उन्हें देख आदर की मुस्कराहट से गांधीवादी सज्जन ने कहा—"अब कुछ काम की बात हो, बस कीजिये इस बहस को।"

यह सुन दार्शनिक ने इतिहासज्ञ की ओर देखा मानो पूछ रहे हों—"क्या अब तक यह सब बेकाम की ही बात हो रही थी ?" कामरेड की ओर नजर जाने पर मालूम हुआ कि गांधीवादी सज्जन की इस सहृदयता से उनके नेत्र लाल हो रहे हैं और मानो वे फट पड़ना चाहते हैं। समय रहते ही इतिहासज्ञ ने होठों पर उँगली रख उन्हें चुप रहने का संकेत कर दिया। उन्हें शायद अभी एक गिलास बरफ का ठण्डा जल और मिलने की आशा थी।



स्त्रियों की स्वतंत्रता और समान अधिकार

अतिथि सत्कार पाने का अवसर चक्कर-क्लब के सदस्यों को बहुत कम मिलता है......। आतुर और द्रवित स्वर में उनसे फिर दर्शन देने की प्रार्थना कोई नहीं करता।...अपना सिगरेट उन्हें फूंकते देखने का चाव किसी के मन में नहीं। क्यों? इसलिये कि समाज की प्रथा और व्यवस्था के अनुसार चक्कर-क्लब के बेकार सज्जन इस सब आदान-प्रदान के अधिकारी नहीं।

इस सब सहृदयता और स्वागत के अधिकारी हैं कौन? मिठाई और पकवान से महकता थाल क्या उनके सामने पेश किया जाता है जिनकी आँतें भूख से कुलबुला रही हों, जो थाली भरा भोजन पा लेने से अपने को स्वर्ग में पहुँचा समझने लगें? संतरे के रस का बर्फ से ठण्डा गिलास पिलाने की जिद्द क्या उन लोगों से की जाती है, जिनके होठों पर प्यास से पपड़ी पड़ गई हो? क्या खमीरे तम्बाखू से महकता पेचवान और टर्किश सिगरेट उन लोगों को पेश किये जाते हैं जिन्हें फर्श पर पड़ी अधजली बीड़ी देख उसे उठा लेने का प्रलोभन होने लगे? धूप में पैदल चलकर आये आदमी का आतिथ्य किया जाता है सीधे प्रश्न से। क्या काम है? और सवारी में बैठे-बैठे ऊंघते चले आने वाले को गद्दीदार कुर्सी दिखा, बैठने का आग्रह किया जाता है।

'सम्मान समाज में उसका होता है जो मोहताज नहीं, भरा-पूरा है, खुशहाल है, दमड़ी या छदाम की भी सहायता मिलने की आशा न होने पर भी सम्पन्न व्यक्ति को सलाम किया जाता है। उन्हें मुस्कराकर जयरामजी कहना पड़ता है। ऐसे मनुष्य का आदर स्वागत करना आवश्यक होता है। पर यह

आदर 'मनुष्य' का नहीं, उसकी 'चादर' का होता है। मनुष्य की 'चादर' ही उसकी सम्पत्ति, शक्ति और सामाजिक स्थिति का चिन्ह है। जो स्वयम सम्पन्न नहीं, वे सम्पत्ति के मालिक का आदर, किसी सुदूर भविष्य में कभी सहायता पा सकने की सम्भावना में, या उसकी सम्पत्ति की शक्ति के भय से करते हैं। जो स्वयम् सम्पन्न हैं, वे सम्पन्न का आदर सम्पत्ति के अधिकार और शक्ति को स्वीकार करने के लिये और सम्पन्नों की दृष्टि में अपनी स्थिति की स्वीकृति पाने की इच्छा से करते हैं। चक्कर-क्लब के मेम्बरों के पास जब धन नहीं तो किस अधिकार से वे सम्मान की, प्रेम-स्वागत की और पराये धन से व्यंजनों की जुगाली करने की आशा कर सकते हैं?...... वे कुछ आशा कर सकते हैं तो केवल चुनाव की फ़सल के मौके पर, जब सभी उम्मीदवारों की सहृदयता और सखावत छलक पड़ती है और गली-गली कर्ण और हातिमताई की पुण्य स्मृति को पुनर्जीवित करने वाले जाग उठते हैं। परन्तु ऐसे स्वर्ण-अवसर जीवन में आते ही कितने हैं? चुनाव की राजनैतिक बहार का झोंका आता है और निकल जाता है। और चक्कर क्लब के मेम्बर बेकारी की जेठ की दुपहरिया से झुलसे समाज के आर्थिक क्षेत्र में सूखे निस्सार तृणों जैसी जीविका चबाते नज़र आते हैं, उनके लिए चाय भरा मिट्टी का कुल्हड़ और उधार माँगी बीड़ी तक दुर्लभ हो जाती है।

परन्तु कहते हैं न—वन में बन्दरों की लड़ाई के कारण बेर झड़ते हैं तो गीदड़ों की भी ज्योनार हो जाती है। वैसे ही एक भलेमानस पति-पत्नि में झगड़ा हो जाने से चक्कर-क्लब के दार्शनिक और इतिहासज्ञ को आतिथ्य पाने का अवसर मिलने लगा। भलेमानस से मतलब बेबस और गरीब नहीं। ऐसा आदमी भला हुआ तो क्या और बुरा हुआ तो क्या? मतलब है, सफेद-पोश सम्पन्न व्यक्ति से। झगड़े से अभिप्राय लाठी, पत्थर या घूंसेबाज़ी से नहीं। ऐसे मौके से हमारे दार्शनिक और इतिहासज्ञ उसी तरह दूर भागते हैं जैसे रोशनी से चमगीदड़। कर्मवीर या शस्त्रवीर वे कभी बन नहीं पाये। पैसा-धेला कमाकर सम्मानित होने का उन्हें न अवसर है न रुचि परन्तु वाक्-वीर वे ऊँचे दर्जे के हैं। युक्ति और तर्क, जिस तरह का भी चाहिए, उनके पास पैंतरे से तैयार मिलेगा।

झगड़ा यह कि श्रीमती जी ने वूमेन्स लीग (अखिल भारतीय स्त्री सभा)

के प्रस्ताव पढ़ लिये हैं और उनका विचार है कि देश की स्त्रियों की गिरी अवस्था सुधारने के लिए उन्हें समाज-सेवा के मैदान में उतर आना चाहिए। यों तो श्रीमान स्वयम नये तरीके के चलन और स्त्री स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं परन्तु सब से अधिक महत्व वे देते हैं, पारिवारिक और सामाजिक शांति को। श्रीमान और श्रीमती के विचारों का प्रभाव समाज की अवस्था और देश के कानून पर क्या पड़ सकेगा, कहना कठिन है। फिलहाल दोनों दलीलों से एक दूसरे को कायल कर देना चाहते हैं। दोनों ही अपने-अपने समर्थकों को चाय के बहाने घर बुलाकर अपने-अपने पक्ष की दलीलें पेश करवाते हैं।

अब तक यदि श्रीमान घर के काम-काज में श्रीमती जी की किसी भूल की ओर संकेत कर देते थे तो श्रीमती कुछ समय के लिये मान से मूंह फुला लेती और मानने पर मान जाती। इस रूठने और मान-मनौवल से दम्पति के कुण्ठित होते प्रेम पर सान चढ़ जाती, वह नया और तीखा बना रहता परन्तु जबसे श्रीमती को अपने अधिकारों का खयाल हो आया है, यह रूठना मान-लीला में समाप्त न होकर बहस में तबदील हो जाता है और बहस दिनों चलती है।

अभी उस रोज श्रीमती जी किसी जलसे में गई हुई थीं। भाग्य के विद्रूप से उस संध्या नौकर खाना ठीक से न बना पाया। श्रीमान ने गृहस्वामी के पद के अधिकार से एतराज किया लेकिन श्रीमती ने सांस भरकर मुंह फुला लेने के बजाय उत्तर दे दिया—"मैं कोई खाना पकाने की नौकर तो हूं नहीं।"

क्रुद्ध हो पतिदेव ने पूछा—"तो घर का काम देखने का तुम्हारा कर्तव्य नहीं ?"

उत्तर में प्रश्न हुआ—"तो क्या मैं घर के काम की नौकर हूं ?"

यह प्रश्न ऐसा था जिस पर दुतरफा बहुत कुछ कहा जा सकता था। पति-पत्नी का यह झगड़ा चाय की महफिल में मेहमानों के सामने सभ्यतापूर्ण ढंग से, सामाजिक समस्या के रूप में पेश हुआ। प्रश्न था, स्त्रियों का क्षेत्र और उनके अधिकार ?

श्रीमती की एक सहेली ने गम्भीरता से दावा किया—"भारतीय सभ्यता में स्त्री का स्थान खास सम्मान पूर्ण है, वह घर की स्वामिनी है। उसे 'देवी'

शब्द से सम्बोधन किया जाता है। अवतारों के नाम तक में स्त्री का नाम पहिले और पुरुष का नाम बाद में आता है जैसे राधाकृष्ण, सीताराम, उमाशंकर। भारतीय घराने में स्त्री को माता का पद दिया गया है। माता के नाते उसका स्थान सब से ऊँचा है।"

श्रीमान के एक समर्थक बोले—"स्त्री का स्थान माता का जरूर है, वह पूजा की भी पात्र है परन्तु पूजा के पात्र जितने देवी-देवता होते हैं वे सब मन्दिर में बन्द रहते हैं और चाबी रहती है पुजारी की जेब में। घर के मन्दिर में स्त्री पूजा की प्रतिमा है जरूर परन्तु मन्दिर का मालिक पुजारी तो पुरुष ही है इसलिये उसी का अधिकार और शासन चलना जरूरी है।"

इन की इस बात से श्रीमान जी के समर्थकों के दबे हुए होठों से हंसी बिखर पड़ी। श्रीमती और उनकी भरपूर देह सहेली के होंठ डोरी खिंचे बटुए की तरह सिकुड़ गये। श्रीमती के दूसरी ओर बैठी हुई थीं, उनके साथ वूमेंस लीग में काम करने वाली एक दुबली-पतली, छरहरे बदन और विशालाक्षी सुशिक्षित युवती। घुटनों पर रखे अपने बटुए से रुमाल निकाल वे माथे का पसीना पोंछती जाती थी और प्रत्येक बोलने वाले के होठों की ओर ध्यान से देखती रहती। श्रीमान के सहायक की इस बात का उत्तर देने के लिये उनका अंतरतम तक व्याकुल हो उठा परन्तु करवट लेकर ही रह गई। शायद पहले परिचय न होने का संकोच था।

श्रीमती की कृपा से गरमागरम समोसे खाकर दूसरे साहब ने कहा—"स्त्री को माता की पूज्य पदवी देना और फिर उसे पुरुष के कब्जे में बताना, यह स्वयम् पुरुष की ईमानदारी का मज़ाक है।" यह सुनकर देवी जी के चेहरे पर उत्साह की लाली छा गई और उन्होंने नौकर को सम्बोधन कर आज्ञा दी, "अरे ओ, देखो, समोसे और लाओ!"

दार्शनिक चाय का प्याला समाप्त कर होठों को चूसते हुए इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि श्रीमान सिगरेट केस जेब से बाहर निकालें इसलिए अपने हाथों को मलकर उन्होंने संकेत किया कि खाने-पीने के साथ कुछ धुआं भी हो तो बुद्धि को चेतना मिले। श्रीमान को सचेत करने के लिए उन्होंने कहा— "सो तो बिलकुल ठीक है परन्तु माता की पदवी की सब से बड़ी दावेदार तो गंगा मैया है, जिनकी छाती पर स्टीमर और नावें रौंदी जाती हैं

और जिनका अंग-भंग कर खेती को सींचा जाता है। दूसरी पूज्य माता है, गैया! जो मनुष्य के उपयोग के लिए गले में रस्सी पहरे, भूसी और घास पाने के लिये मनुष्य की ओर कातर दृष्टि से निहारा करती है। गैया मैया स्वतन्त्रता के मिथ्याभिमान से या पूज्य माता होने के गर्व से, दूध देने के समय यदि लात चलाने का साहस करती हैं तो टांगों में रस्सी बांधकर उनका दूध निकाल लिया जाता है। उनकी पूजा और उनके मातृत्व का सम्मान केवल इसीलिये है कि वे पुरुष यानी मनुष्य के लिए उपयोगी हैं।"

माता के पद का दावा करने वाली श्रीमती की सहेली ने चिढ़कर प्रश्न किया—"तो आप स्त्री को भी गाय की ही तरह पुरुष की सम्पत्ति समझने का साहस कर सकते हैं?"

दार्शनिक की इस चोट से प्रसन्न होकर श्रीमान जी ने तुरन्त सिगरेट केस खोल उनके सामने पेश कर दिया और नौकर के उद्देश्य से चिल्लाकर बोले—"अरे ओ! क्या कर रहे हो; चाय और क्यों नहीं लाते?" और फिर अपने विचारों की उदारता का परिचय देने के लिये उन्होंने कहा, "अजी, स्त्री और पुरुष दोनों का समाज में अपना-अपना स्थान है, अपना-अपना कर्तव्य है·······।"

आराम से सिगरेट सुलगा दार्शनिक ने दुस्साहस का ताना देने वाली श्रीमती जी की ओर देखकर उत्तर दिया—"साहस की बात आप पूछती हैं? हम तो उन सब पुरुषों को महामूर्ख समझते हैं जो स्त्री नाम के जीव को पालकर अपने सिर व्यर्थ में इतना भारी झंझट ले लेते हैं! आप ही कहिए, पुरुष के जीवन का झंझट ही क्या? परन्तु स्त्री के आ जाने से हजार झंझट पैदा हो जाते हैं। स्त्री से पैदा हो जाने वाले झंझट से·······आप स्वयं बताइये··पुरुषों को मुसीबत के सिवा लाभ क्या?"

तिनक कर श्रीमतीजी बोलीं—"वह झंझट तो पुरुषों की वजह से स्त्रियों को ही उठाना पड़ता है। बेचारियों को उम्र भर गुलाम बनाकर रखा जाता है? पुरुषों को क्या झंझट है; उन्हें कौन कैद है? जुल्म करते हैं और चैन से रहते हैं।"

व्यर्थ जलते हुए सिगरेट का जीवन सार्थक करने के लिए एक खूब लम्बा कश खेंच दार्शनिक बोले—"पुरुषों को कैद है उनकी हिमाकत की

वजह से। जो दिन भर बैल की तरह घर का कोल्हू चलाने के लिए परेशान रहते हैं। पुरुष कमबख्त यह हिसाब लगाने का ख्याल कभी नहीं करता कि उसके परिश्रम के फल का कितना भाग स्वयं उसके उपयोग में आता है और कितना उससे लिपटी आकाश बेल खेंच लेती है। उसे फिक्र रहती है, बीवी के लहंगे में किनारी लगाने की और बीवी से पैदा होते जाने वाले बच्चों की ?......" कुर्सी पर आगे खिसक और तिपाई पर घूंसा मारकर उन्होंने कहा, "आप लोग प्रकृति को ठीक मानते हैं या नहीं ? आप बताइए कौन बैल गौ-माता के लिए चारा इकट्ठा करने की फिक्र करता है ? कौन शेर शेरनी के लिए शिकार ढोता फिरता है ? या हिरन हिरनी के लिए घास बटोरता है ? पक्षियों में अलबत्ता इतना रिवाज जरूर है कि बच्चा जब तक फुदकने लायक न हो जाय, मर्द उसकी चोंच में चुग्गा देता है। और देखिए पुरुष अपने आपको जीवों का राजा समझता है परन्तु है वह वास्तव में पशुराज ! क्योंकि पशुओं की तरह हल में जोता जाकर खुश होता है। बीवी को सोने चांदी और रेशम में लपेट-लपेट कर रखता है इसलिए कि वह आंखों में काजल लगा उसकी ओर देख मुस्करा दिया करे ? और फिर इन्हीं आंखों से ज़ख्मी होकर रोता है—"तेरी इन आंखों ने किया बीमार हाय.......!"

दार्शनिक को चुप होते देख इतिहासज्ञ ने अपना खाली प्याला तिपाई पर रखते हुए कहा—"अपनी सम्पत्ति को बना-सवार कर यदि पुरुष रखता है तो इससे मिल्कियत का संतोष तो उसे होता है। पुरुष स्त्री की सेवा भी उसका उपयोग अधिक अच्छे और गहरे ढंग से कर पाने के लिए ही करता है ? एहसान की बात क्या ? स्त्री का अस्तित्व ही पुरुष के उपयोग के लिये है ?"

कढ़ाई की गरमी से चिटकते और भाफ उड़ाते हुए समोसों की तश्तरी नौकर के हाथ से ले, समोसों के शौकीन अपने वकील के सामने रख श्रीमती ने सहायता मांगती कातर आंखों से देखा।

गरमागरम समोसे से जिह्वा को तेज करते हुए यह सज्जन बोले—"स्त्री को पुरुष के उपयोग की सम्पत्ति समझना पुरुष की सम्पूर्ण सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और नैतिक भावना का अपमान करना है। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक ऊंचे स्तर पर है। स्त्री पुरुष की प्रकृति से पशुता के भाव को दूर कर

उसे विचारपूर्ण, सूक्ष्मदर्शी और न्याय प्रिय बनाती है। यदि आपके साहित्य से स्त्री के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाला विषय निकाल दिया जाय तो उसमें शेष रह क्या जाता है ? यही बात आपकी कला, आचार और नीति शास्त्र के सम्बन्ध में है। पुरुष यदि अपनी पाशविक शक्ति से स्त्री पर शासन करता है तो यह उसका अन्याय है, उसके मनुष्यत्व में न्यूनता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्यता के मार्ग पर कदम बढ़ाता जाता है, वह स्त्री के अधिकार और सम्मान को स्वीकार करता जाता है।"—अकाट्य प्रमाण और गम्भीर युक्ति देने के भाव से इन महाशय ने श्रीमान के सहायक, दार्शनिक और इतिहासज्ञ को ललकारा।

समोसों की तश्तरी एक बेर फिर इनकी ओर सरकाकर देवी जी ने संतोष से अपनी सहेली की ओर देखा और फिर कनखियों से श्रीमान की ओर।

श्रीमती जी की सहेली गर्व से सिर ऊंचा कर बोलीं—"भारतीय सभ्यता में स्त्री को सदा पुरुष से ऊंचा माना गया है तभी तो शास्त्रों में लिखा है, यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता ! जहा स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का आशीर्वाद बरसता है।"

श्रीमान जी ने परेशानी से अपने समर्थकों के चाय के प्याले दुबारा भरने आरम्भ किये। उनके समीप बैठे उनके एक समर्थक बोले—"भारतीय साहित्य में भी तो लिखा है—ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी।"

इनके इस सस्ते और ओछे मजाक से खीझकर श्रीमती के समर्थक समोसा प्रेमी सज्जन बोले—"इन टुच्ची बातों में क्या रखा है ? क्या आप अपने साहित्य और संस्कृति में स्त्री की बड़ी भारी देन से इनकार कर सकते हैं ? स्त्री में जो भावुकता, करुणा और कोमलता है, उसे आप पुरुष में कहाँ पाइयेगा ? क्या आप इस बात से इनकार कर सकते हैं कि स्त्री ने पुरुष को मनुष्य बनने में सहयता दी है ?"

होठों में थमे सिगरेट के धुयें से चरमराती आँखों को कठिनाई से खोलकर दार्शनिक बोले—"स्त्रियों ने पुरुष को मनुष्य बनने में जो सहायता दी

है उस से इनकार करने की जरूरत नहीं परन्तु स्त्रियों ने सहायता दी नहीं, उपयोग का साधन बनाकर सहायता उनसे ली गई है। मनुष्य की उन्नति के कार्य में भाफ़ के इंजन ने बहुत सहायता दी है। भाफ़ के इंजन की तरह मनुष्य लाखों मन बोझ नहीं खींच सकता। घड़ी ने मनुष्य की सभ्यता के विकास में बहुत सहयता दी है। मनुष्य घड़ी की तरह पल-पल और क्षण-क्षण का हिसाब अपने दिमाग़ में नहीं रख सकता और सुनिए मनुष्य रेडियो यंत्र की तरह हवा में से शब्द की लहरों को नहीं पकड़ सकता परन्तु यह सब यंत्र मनुष्य के स्वामी और शासक होने का दावा नहीं कर सकते। यह सब मनुष्य के विकास में सहायता देते हैं परन्तु हैं वे मनुष्य के उपयोग के लिए ही, उसके समान या उस से बड़े वे नहीं हैं।"

श्रीमती ने बिगड़कर कहा—"पुरुषों के दिमाग़ में न जाने कैसे मिथ्या अभिमान भरा है कि स्त्रियों को अपने उपयोग की सम्पत्ति समझते हैं।"

श्रीमान् के सहायक बोले—"जो सदा से होता चला आया है उसमें मिथ्याभिमान की बात क्या ? स्त्रियों में पुरुषों के समान शक्ति और और सामर्थ्य है ही नहीं तो रोने झींकने से वे उनके समान हो कैसे सकती हैं ?"

श्रीमती की सहेली ने इस धृष्टता का विरोध किया—"वाह, सदा से ऐसा कहां होता आया है ? भारत में स्त्रियों का बहुत सम्मान था। उनका स्थान बिलकुल पुरुषों के बराबर था। पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग माना गया है। विवाह के समय पुरुष को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि प्रत्येक बात में स्त्री की राय से काम करेगा। स्त्री को देवी कहा गया है। स्त्री का स्वयम्वर होता था और वह अपनी इच्छा से पति चुनती थी। यह तो आज-कल की चरित्रहीनता है कि पुरुष अपने आप को ही सब कुछ समझने लगे हैं। स्त्रियां पुरुषों से किस बात में कम है। रानी लक्ष्मीबाई, चांदबीबी और चित्तौड़ की पद्मिनी किससे कम थीं ? स्त्रियां को अवसर मिले तो वे क्या नहीं कर सकतीं ? पुरुष उन्हें अवसर ही नहीं देते।"—देवीजी इतने आवेग में बोल रही थीं कि क्रोध में धुथला जाती थीं और उनकी आंखों के लाल डोरे फैल गये।

इतिहासज्ञ इन देवी जी के रोब में आ जाते परन्तु चाय के नये प्याले की भाफ़ ने उनका साहस बढ़ा दिया, बोले—"भारत में क्या होता था सो तो

हमें भी मालूम है। हिन्दुओं की स्मृतियों में लिखा है—"स्त्री शूद्रौ न धीयाताम ?" अर्थात् स्त्री और शूद्र को पढ़ाना नहीं चाहिए ! वजह, स्त्री और शू को पढ़ाया जायगा तो वह सेवा के काम के नहीं रहेंगे, दलील करने लगेंगे। बैल को आप बाज़ीगरी के खेल सिखाइये तो फिर वह हल थोड़े ही जोतेगा ? कहेगा, मैं अपनी इच्छा से काम करूंगा और मालिक से बराबरी का दावा करेगा। हिन्दुओं के यहाँ स्त्री को कितनी स्वतंत्रता थी, यह तो इसी बात से प्रकट है कि विवाह को कन्यादान कहा जाता है। जिस वस्तु का दान कर दिया जा सकता है, उसकी इच्छा या अनिच्छा का, उसकी स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। स्वयम्वर किया जाता होगा परन्तु वह स्त्री को स्वतंत्रता देने के लिये नहीं इसलिये कि वीर पुरुष आपस में औरत के लिये झगड़ें नहीं। स्वयम्वर के मैदान में औरत को कौड़ी की तरह उछाल फेंका, जिसके भाग में जा पड़ी उसकी किस्मत ! उसमें लड़ने-झगड़ने की कोई बात नहीं।"

मुंह तक आई बात को अनेक बेर निगलकर श्रीमती की विशालाक्षी सहेली, माथे पर फूटते हुए पसीने के कणों को हथेली में छिपे रुमाल से सुखाती हुई आखिर बोलीं—"यह सब बातें और नियम तो पुरुषों के बनाये हुए हैं। यदि वे उनके हक़ में हैं तो आश्चर्य क्या ? परन्तु प्रकृति ने स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही पैदा किया है। फिर कोई वजह नहीं कि समाज में स्त्रियों को समान सुविधाएँ और अधिकार न हों ?"

अपने चाय के प्याले को आधे में ही छोड़कर इतिहासज्ञ बोल उठे—"आप चाहती तो बहुत कुछ हैं परन्तु स्त्री की परिस्थिति ने ही उसे पुरुष के वश में रहने के लिये मजबूर कर दिया है, यह बात आप कैसे नजर अन्दाज कर सकती हैं ?"

"क्या मतलब आपका ?"—देवीजी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को विस्मय से और अधिक फैलाते हुए पूछा—

"मतलब यह है"—इतिहासज्ञ बोले, "यदि स्त्री हिरनी या शेरनी की तरह अपने बाल-बच्चे को ले बन-बन उछलती फिरने के लिये तैयार है, वह वन्य जन्तुओं की मादा की उत्पत्ति की जिम्मेवारी उस के पिता पर डालकर

उससे निरन्तर सहायता लेती रहना चाहती है, तो उसे उस पर निर्भर रहना ही होगा।"

"परन्तु परिवार के संगठन में पुरुष भी तो स्त्री पर निर्भर करता है?"—विशालाक्षी देवी जी ने अपनी कोमल और पतली उँगलियों को हवा में नचाकर प्रश्न किया।

बहस को बारीक उलझन में फंसते देख इतिहासज्ञ अपनी चाय भूल उत्तेजना में बिलकुल कुर्सी के किनारे पर खिसक आये। देवी जी की उँगलियाँ नचाने के उत्तर में अपना लम्बा चौड़ा हाथ उठाकर इन्होंने कहा—"मान लिया कि परिवार के संठगन में स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं—परन्तु दोनों में जो बलवान होगा, अधिक समर्थ होगा, परिवार का नियंत्रण उसी के हाथ............।"

कुछ क्रुद्ध स्वर में देवी जी ने टोककर कहा—"यानी पुरुष को अपनी शारीरिक शक्ति पर, पाशविक शक्ति पर अभिमान और भरोसा है।"

"जब वह शक्ति है तो उससे इनकार कैसे किया जा सकता है?"—श्रीमान् के समर्थक ने अपने सबल घूंसे का प्रबल प्रहार अपनी कुर्सी की बाँह पर कर श्रीमान् जी की ओर देखकर पूछा—"स्त्री को अपनी किस शक्ति पर अभिमान है?"

बहस में झगड़े का रंग आता जान और आइन्दा चाय और समोसों की आशा जाती देख दार्शनिक अपने आधे जले सिगरेट को राखदानी में छोड़, दोनों हाथ उठाकर बोले—"देखिये देखिये, पाशविक शक्ति की बात नहीं। मशीन ने मनुष्य शरीर की पाशविक शक्ति का महत्व बहुत घटा दिया है। प्रश्न है व्यवस्था का। आजकल भी आप देखते हैं, समाज में पैदावार पूंजीपति मालिकों और उनके मजदूरों के सहयोग से होती है परन्तु नियन्त्रण मालिकों का ही रहता है। इसलिए नहीं की पूंजीपति पहलवान होते हैं और मजदूर शारीरिक रूप से कमजोर! बल्कि इसलिए कि व्यवस्था पूंजीपति के हाथ में रहती है।

इनकी बात काटकर विशालाक्षी देवी जी ने फिर टोक दिया—"परन्तु पूंजीपतियों को तो लोग कोसते हैं, ताने देते हैं.......।"

इन्हें चुप कराने के लिए हाथ उठा दार्शनिक बोले—"क्षमा कीजिए, यह अधिकार स्त्रियों का है।"

"बिलकुल ठीक"—ऊँचे स्वर में समर्थन कर श्रीमान के मित्र प्रसन्नता से अपनी कुर्सी पर उछल पड़े। इस मजाक की कुछ चिंता न कर विशालाक्षी देवी ने अपने प्रश्न को फिर से दुहराया—"पूंजीवाद को आप बुरा समझते हैं तो स्त्रियों पर पुरुषों के नियंत्रण को आप अच्छा कैसे समझ सकते हैं ?"

देवी जी को ढंग पर आते देख दार्शनिक ने शान्त स्वर में उत्तर दिया—"अच्छा हम दोनों को ही नहीं समझते परन्तु जैसे पूंजीवाद कुछ कारणों से पैदा हुआ और ऐसा होना समाज के विकास के लिए स्वाभाविक और आवश्यक था, उसी प्रकार कुछ कारणों से स्त्रियों पर पुरुषों का नियंत्रण हुआ और समाज का जैसा कुछ विकास हो सका है, उसके लिए यह स्वाभाविक और आवश्यक था परन्तु इसके माने यह नहीं कि पूंजीवाद सदा के लिए बना रहे। उसकी उपयोगिता समाप्त हो गई। इसी प्रकार अब स्त्रियों को दास बनाये रखना पुरुषों के लिए उपयोगी नहीं रहा।"

"यह आप कैसे कह सकते हैं कि स्त्रियों पर पुरुषों का नियंत्रण आवश्यक और स्वाभाविक था ?"—देवी जी ने निराशा के से स्वर में पूछा।

श्रीमान का सिगरेट जलाने का हक़ अदा करते हुए इतिहासज्ञ बोले—"पुरुषों के नियंत्रण की बात सुनकर आप को बुरा तो मालूम होता है परन्तु उसके कारणों को तो सोचिए। आप समाज की उस अवस्था को याद कीजिए जब मनुष्य छोटे-छोटे कबीलों और कुनबों के रूप में थोड़ी बहुत जमीन खेती के लिए घेर कर और जंगल से शिकार करके निर्वाह करता था। जीवन-निर्वाह का सहारा या तो खेती की मामूली जमीन थी या शिकार। उस समय यह कबीले आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। उस समय स्त्री की क्या स्थिति हो सकती थी ? पुरुष खेती की जमीन खोदने, शिकार इकट्ठा करने में लगा रहता होगा और स्त्री बच्चे को पेट या पीठ पर बाँधे खेती का काम करती होगी या पालतू बैल-बकरी को चारा डालती होगी ? युद्ध और भय के समय पुरुष अपने कबीले की स्त्रियों को बीच में घेर कर या गुफा में छिपाकर शत्रु का सामना करता होगा। उस समय पुरुष भय का सामना स्वयम् करता था और स्त्री की भय से रक्षा करता था। वह चाहता तो स्त्री को मार-पीट कर

युद्ध और भय का सामना करने भेज देता और स्वयम् चैन की नींद सोता परन्तु ऐसा करने में उसकी रक्षा न होती इसलिये भय का सामना कबीले के पुरुष ही करते थे और स्त्रियों की रक्षा करते। इसलिये नहीं कि स्त्रियां कुर्सी पर बैठे कर स्वतंत्रता मांगें बल्कि इसलिए कि वे उनकी आवश्यकतायें पूरी करें। पुरुष स्त्री की रक्षा करता था, आत्म रक्षा के लिए! यह आत्म रक्षा व्यक्तिगत रूप से नहीं सम्मिलित रूप से कुनबे या क़बीले के रूप में ही हो सकती थी। क़बीले में दस पांच वीर पुरुषों की मृत्यु का नुकसान बर्दाश्त किया जा सकता था परन्तु स्त्री की मृत्यु का नहीं क्योंकि एक स्त्री कई पुरुषों को जन्म देने की शक्ति रखती है। स्त्री को कुनबे और समाज की वृद्धि का स्रोत समझा गया और माता कह कर उसके उपयोगी और मूल्यवान होने का भाव प्रकट किया गया, यह नहीं कि वह समाज की मालिक बना दी गई।"—इतिहासज्ञ ने दम लेने के लिये विशालाक्षी देवीजी को सम्बोधन कर पूछा, "समझती हैं आप ?"

"आप का मतलब है, स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है ?"—उन्होंने असंतोष के स्वर में प्रश्न किया।

"स्त्री आज भी सम्पत्ति मानी जाय, यह तो हमने कहा नहीं।"—इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया, "परन्तु उस समय स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति न सही कुनबे की सम्पत्ति अवश्य थी। उस समय कोई भी वस्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती थी; न भूमि, न पशु और न स्त्री, सभी कुछ कुनबे का था। उस समय दो कुनबों में लड़ाई होने पर हारे हुए कुनबे के पुरुषों को मारकर खा लिया जाता था और स्त्रियां छीन कर पाल ली जाती थी। जंगली जातियों में अब भी ऐसा ही होता है। स्त्रियों को छीन लेने का अर्थ होता है कि वे किसी की वस्तु रही होंगी और छीनने वाले के लिए भी उपयोगी हो सकती हैं। स्त्रियों को छीन लेने की प्रथा तो आपके आदर्श और अभिमान की वस्तु रामायण और महाभारत के समय तक ही नहीं बल्कि राजपूतों और मुग़लों के समय तक थी। उस प्रथा के गौरव के कारण आज भी वर कन्या के घर बरात के रूप में सेना लेकर और कमर में तलवार बांध कर जाता है। पुरुष जब असभ्य था, तब स्त्री को छीन लेता था। अब सभ्य हो गया है तो उसका कन्यादान करता है।"

क्रोध में भिन्नाकर विशालाक्षीजी वोलीं—"पुरुषों की इस नीचता और पशुता पर आप अभिमान करना चाहते हैं क्या ?"

"हाँ और क्या"—श्रीमती ने उनका समर्थन किया। देवियों के अपनी कुर्सियों पर विचलित हो जाने से ऐसा भय हुआ मानो वे सामूहिक रूप से पुरुषों पर आक्रमण कर अपने निरंतर दमन का वदला ले लेना चाहती हैं। वहुत दिनों में मिली मन भाई चाय की तृष्णा दार्शनिक अभी पूरी नहीं कर पाये थे। वातावरण को शांत करने के लिए उपेक्षित चायदानी से ठण्डी चाय उड़ेलते हुए उन्होंने कहा—"जैसे मनुष्य अपनी जंगली अवस्था की याद कर मनुष्य को भून कर खा लेने की वात का अभिमान नहीं कर सकता, उसी प्रकार स्त्री को सम्पत्ति वनाए रखने की वात का भी गर्व वह नहीं कर सकता।"

इस वात से श्रीमती जी का डूवता हुआ हृदय खिल उठा। सहृदयता से दार्शनिक को ठण्डी चाय न पीने की सलाह दे उन्होंने चायदानी में और गरम पानी ले आने का आदेश नौकर को दिया।

वनी वनाई वात विगड़ जाने के कारण विक्षिप्त हो श्रीमान के सहायक वोले—"किसी समय स्त्रियों की चाहे जो अवस्था रही हो परन्तु आजकल योरूप की उल्टी सभ्यता के जमाने में तो सव ओर स्त्रियों का ही प्रभुत्व दिखाई दे रहा है।" एक अखवार उठाकर उन्होंने कहा, "कोई विज्ञापन देखिये तो ९० फीसदी वस्तुयें स्त्रियों के मसरफ की हैं। कविता पढ़िये उसमें भी स्त्री के सौन्दर्य का चर्चा, कोई अच्छा चित्र देखिये तो उसमें औरत ! यह औरतों का राज नहीं तो और क्या है ?"

देवियां विस्मयपूर्ण नेत्रों से सोचने लगीं कि यह वात उनके पक्ष में हुई या विपक्ष में ? उनका विस्मय और भी वढ़ गया जव दार्शनिक ने मुस्कराकर कहा—"इसे आप समाज में स्त्रियों का प्रधान्य नहीं कह सकते ? इसे आप स्त्रियों की क़द्र कह सकते हैं। स्त्रियों की यह क़द्र पुरुप अपने ही संतोप के लिये करता है और स्त्री उपयोग का पदार्थ मात्र वन जाती है। स्त्री को आधार वनाकर जो कला और साहित्य चलता है, वह प्रधानतः पुरुप के संतोप के लिए ही है। स्त्री के सम्वन्ध से पुरुप को जो सुख मिलता है, उस का वखान

स्त्री के मुख से कराकर, स्त्री के मुख से अपने विरह के गीत सुनकर उसका आत्माभिमान पूरा होता है।"

देवियों के माथे पर पड़ती भृकुटी की कुछ चिंता न कर वह कहते चले गये—"यही पुरुष का काव्य और कला है। पुरुष की सबल अंगभंगी देखने की अपेक्षा स्त्री की कोमल अंगभंगी देखने से उसके स्नायु तंतुओं में अधिक स्फुरण होता है। उसके शरीर में रसों का वेग बढ़ जाता है। इसलिए वह स्त्री को नचाता है। यों तो वह लज्जा को स्त्री का भूषण निश्चित करता है परन्तु फैशन के तरीके में वह अपनी बालों से भरी भुजाओं और सीने को मोटे कपड़े से ढक कर, लाज से कुम्हलाती कामिनी की बांहे, सीना और पीठ खुली रखने की सलाह दे देता है। स्त्री को वह सजीली और संतुष्ट देखना चाहता है क्योंकि संतुष्ट स्त्री का उपयोग अधिक सुखदाई होता है।"

श्रीमान के सहायक सहसा बौखला उठे—"यह आप क्या कहते जा रहे हैं? स्त्रियां क्या पुरुषों से अधिक सुन्दर होती हैं?......कभी नहीं! आप बताइये, कबूतर अधिक सुन्दर होता है या कबूतरी; शेर अधिक सुन्दर होता है या शेरनी; मोर अधिक सुन्दर होता है या मोरनी?"—ललकार के भाव से दार्शनिक की ओर वे देखने लगे।

श्रीमती ने चायदानी में नई चाय लाने का हुक्म दिया था परन्तु चाय आने तक उनका उत्साह धीमा पड़ कर श्रीमान अधिक उत्साहित हो गये। नौकर के हाथ से चायदानी ले उन्होंने अपने समर्थक के इनकार करते जाने पर भी उनका प्याला नये सिरे से भर दिया और इनके बाद दार्शनिक के लिये नये प्याले में चाय डाल वे एक पर एक चम्मच चीनी के उसमें छोड़ने लगे। यहां तक कि दार्शनिक महोदय ने घबराकर अपने दोनों हाथों से प्याला ढककर उसकी रक्षा की। एक बेर अर्थपूर्ण दृष्टि से विशालाक्षी देवी की ओर देख उन्होंने उत्तर दिया—"शायद सुन्दर तो मोर ही होता है परन्तु मोर की दृष्टि में मोरनी ही अधिक सुन्दर जंचती है।"

इतिहासज्ञ का प्याला खाली ही रह गया था इसलिये श्रीमान से आंखें मिला कर उन्होंने कहना शुरू किया—"मनुष्य-समाज का निर्वाह चलता है उसकी भूख और आवश्यकताएं पूरा करने वाली वस्तुओं से। इन वस्तुओं को या निर्वाह के साधनों को मुहय्या करने में पुरुषों का हाथ मुख्य रहना

आया है। इसलिये उसका प्रधान रहना स्वाभाविक था।"—इतिहासज्ञ ने देखा श्रीमान अपनी भूल के लिए क्षमा माँगते हुए उनका चाय का प्याला भर रहे थे। वे कहते चले गये, "कबीलों की आदिम सभ्यता के जमाने में स्त्रियाँ कबीले की आवश्यकता पूर्ति का साधन थीं इसलिये वे कबीले की सम्पत्ति थीं। कबीलों का आकार बहुत लम्बा-चौड़ा हो जाने से वे परिवारों में बँटने लगे। एक-एक परिवार समाज में पृथक स्थिति बना अपना प्रबन्ध अलग-अलग करने लगा तब निर्वाह और आवश्यकता पूर्ति के दूसरे साधनों भूमि, पशु आदि की भाँति स्त्रियाँ भी परिवार की या परिवार के मुख्य पुरुष और उसके उत्तराधिकारी की सम्पत्ति बन गईं। स्त्रियाँ खेती-बाड़ी आदि के कामों में सहायक होती थीं। परिवार में अधिक संतान होने से परिवार की शक्ति बढ़ती थी इसलिये एक-एक पुरुष कई-कई विवाह करने लगा। गुलामी की प्रथा चालू हो जाने पर अमीर और साधन-सम्पन्न लोग स्वयम् शारीरिक परिश्रम के कठिन कामों से बचने लगे। इसके साथ ही अमीरों और सम्पन्न सरदारों की स्त्रियों को भी कठिन शारीरिक परिश्रम से छुट्टी मिल गई। उनका कार्य हो गया केवल वंश और सम्पत्ति के लिये उत्तराधिकारी पैदा करना। यहाँ तक कि बहुत बड़े सर्दारों, नवाबों और राजाओं के यहाँ वंश और रक्त की शुद्धता और अभिमान कायम रखने के लिये ऊँचे वंश और शुद्ध रक्त की स्त्री को सुरक्षित रख भोगविलास के लिये दूसरी स्त्रियां रखी जाने लगीं। भोग के लिये अधिक उपयोगी बनाने के लिये स्त्री को कठोर परिश्रम से दूर रख कोमल बनाया गया। जैसे मिठाई को अधिक रोचक बनाने के लिये उस पर चाँदी का वरक लगाकर उसमें सुगन्ध डाली जाती है, उसी तरह स्त्री के केशों में सुगन्धित तेल, उसके हाथों में मेंहदी, गालों और होंठों पर सुरखी लगाई गई। उसके अंगों को सोने चाँदी और चमकीले पत्थरों के आभूषण बनाकर मढ़ दिया गया ताकि वह अधिक रोचक और आकर्षक बन सके.......।"

इतिहासज्ञ को टोक कर दार्शनिक बोल उठे—"पीढ़ी दर पीढ़ी इस प्रकार उपयोग और उपभोग का साधन बनती रहने के कारण स्त्रियों के मन में ऐसे संस्कार पड़ गये हैं कि वे आज स्वतंत्रता की माँग का बावेला मचाकर भी अधिक कोमल, निर्बल, सुन्दर, अधिक रोचक, अधिक उपयोगी और आकर्षक होने का गर्व करती है।"

दार्शनिक की यह धृष्टता देवियों के लिए असह्य हो गई। श्रीमती जी की सहेली चली जाने के लिये उठ खड़ी हुई। इतिहासज्ञ और दार्शनिक के भाग्य से ठीक उसी समय पानी का एक बहुत जोरदार छींटा आगया। श्रीमान् को प्रसन्नता और उत्साह छलका पड़ता था। चील के परों जैसी दोनों बाहें हिलाकर उन्होंने ऊंचे स्वर में उदारता से कहा—"अरे साहब बैठिये न, कहां जाइयेगा इस पानी में ? इस बारिश में तो गरम पकौड़ी का मज़ा आयेगा !" —और देवीजी की उदासीनता की चिन्ता किये बिना उन्होंने नौकर को गरमागरम पकौड़ी बना लाने की आज्ञा दे दी।

अपनी धृष्टता का मार्जन कर देवियों को संतुष्ट करने के लिए दार्शनिक बोले—"स्त्रियों की स्वतंत्रता का प्रश्न मनुष्य की सभ्यता के विकास के साथ अनिवार्य रूप से बंधा हुआ है।" इस बात से देवियों को कुछ भी संतोष होता न देख इतिहासज्ञ ने कहना शुरू किया, "ज्यों-ज्यों मनुष्य के निर्वाह के ढंग में परिवर्तन आता जाता है, उसके समाज की व्यवस्था और समाज में व्यक्तियों और श्रेणियों के पारस्परिक सम्बंध बदलते जाते हैं।"

इतिहासज्ञ की यह पहेली श्रीमतीजी की भारी भरकम सहेली की समझ में न आई। हाथ की पीठ पर ठोढ़ी टिका, पलकें चढ़ा, उन्होंने पूछा—"किनका सम्बन्ध ?"

अपनी बात की ओर ध्यान आकर्षित देख इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"सभी के सम्बन्ध, काम करने और कराने वालों के सम्बन्ध, स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध, उनका एक दूसरे पर निर्भर करना और परस्पर शोषण !"

"वह कैसे ?"—विशालाक्षी देवी ने सतर्कता से पूछा।

"देखिये, मशीन का उपयोग होने से पहले समाज में मनुष्यों के जैसे परस्पर सम्बन्ध थे वैसे अब नहीं रहे ?"

"कैसे सम्बन्ध थे जो अब नहीं रहे ?"—श्रीमान के सहायक ने विस्मय से पूछा।

"सम्बन्ध का मतलब है, निर्वाह के लिये जरूरी चीजों को पैदा करने में मनुष्यों का परस्पर सहयोग !"—इतिहासज्ञ बोले, "पहले मनुष्य के निर्वाह के लिये आवश्यक चीजें पैदा की जातीं थीं खेती से या हाथ के परिश्रम से।

पहले चीज़ें पैदा की जाती थीं उपयोग के लिये। अब पैदा की जाती हैं बिक्री के लिए। मनुष्य जो कुछ परिश्रम से पैदा करता है, वह उसका या समाज का धन होता है। धन की सहायता से नया धन पैदा होता है। जिन लोगों के हाथ में धन होता है वे पैदावार के साधनों के मालिक, अन्नदाता या प्रभु समझे जाते हैं। पुराने समय में धन पैदा करने का साधन था भूमि और मनुष्य का परिश्रम इसलिये मालिक और ठाकुर लोग भूमि अपने अधिकार में रखते थे और भूमि पर काम करने के लिये दासों की सेनायें रखते थे। उस समय मालिकों और प्रजा में दास और स्वामी का सम्बन्ध था। दास स्वामी की सम्पत्ति होते थे। सामाजिक रूप से स्त्री दासों की श्रेणी में गिनी जाती थी इसीलिये दास-धन, स्त्री-धन, पशु धन पुरुष की सम्पत्ति गिने जाते थे। स्त्री, पुरुष को रिझाने के लिए अपने आपको पति के चरणों की दासी कहती थी।"

क्या हांक रहे हो यार ? हमारे यहाँ राजा-प्रजा का शोषण करते थे कि राम-राज्य में राजा प्रजा के सेवक होते थे.......?" श्रीमान के सहायक ने प्रश्न किया।

"प्रजा की सेवा करने के लिए प्रजा पर शासन और अधिकार जमाने और सेना खड़ी करने की क्या आवश्यकता हो सकती थी साहब ?"—दार्शनिक बीच में बोल उठे, "आप कहिए कि उस समय के राजा चतुर होते थे, प्रजा को और दासों को अपने अधिकार और शासन में रखने के लिए, उन्हें संतुष्ट बनाए रखने की चेष्टा करते थे, तो एक बात है। यों घरेलू पशुओं की भी सेवा की ही जाती है परन्तु इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि उनकी सवारी न की जाय या उनसे दूध न दुहा जाय ; वे उपयोग की वस्तु नहीं ? यह प्रयोजन पूरा करने के लिए ही तो उनकी सेवा की जाती है, उन्हें बेटा और सन्तान बनाया जाता है।"

"समाज के आचार और नीति का उद्देश्य है व्यवस्था को चलाना !" दार्शनिक की बात से इतिहासज्ञ गम्भीर भाव से बोले, "इसीलिए समाज में निर्वाह की वस्तुओं को पैदा करने के काम ठीक से जारी रखने के लिए पुराने समय में उपदेश दिया गया कि दास का धर्म है, मालिक को पिता और परमेश्वर समझे। मालिक की सेवा में यदि सेवक अपने प्राण अर्पण कर दे तो उसे स्वर्ग मिलेगा। परिवार की व्यवस्था में विघ्न न आने देने के लिए

स्त्री को भी कहा गया कि सब प्रकार से पति को ही परमेश्वर माने, उसके लिए प्राण दे दे, उसके मरने पर सती हो जाय। पुरुष आपस में एक दूसरे की स्त्री के लिए मार-काट और झगड़ा न करें, इसलिये निश्चय किया कि दूसरे की औरत पर निगाह डालना पाप है............ ...।"

"तो यह सब नियम तो पुरुषों ने अपने ही स्वार्थ के लिए बनाए हैं"— विशालाक्षी देवी उत्साह से गर्दन ऊँची कर बोलीं—"और अब भी वे अपना राज कायम रखना चाहते हैं ?"

"पुरुष चाहें क्यों न ?"—अपनी कुर्सी पर आगे खिसक दार्शनिक ने कहा, "कोई अपना अधिकार और शक्ति अपने हाथ से क्यों जाने दे ? परन्तु मजा तो यह है कि स्वयम स्त्रियाँ ही इस सामाजिक व्यवस्था को, जिसमें स्त्री की गुलामी और उसका पुरुष पर निर्भर रहना अनिवार्य है, मजबूत बनाए रखने की चेष्टा करती हैं।"

इन्हें टोक, बेबसी में अपनी दोनों हथेलियाँ दिखाती हुई श्रीमती बोलीं — "वाह साहब, स्त्रियाँ भला अपनी गुलामी क्यों चाहेंगी ? यह तो पुरुषों की जबरदस्ती है; क्यों.........?"—उन्होंने विशालाक्षी देवी की ओर समर्थन की आशा से देखकर पूछा।

विशालाक्षी ने इनके इस प्रश्न की उपेक्षा कर दार्शनिक से अपने पक्ष के समर्थन में नई बात सुन पाने की आशा से पूछा—"इस व्यवस्था से आपका मतलब ?"

"यही विवाह की व्यवस्था।"—दार्शनिक ने कुछ सहमते हुए उत्तर दिया। दार्शनिक की इस बात से दोनों ही पक्ष के लोग विस्मित रह गए। श्रीमान के सहायक ने वितृष्णा से कहा, "आपका मतलब है विवाह ही नहीं होना चाहिए ? वाह साहब, वाह ! खूब कहा आपने ! तो फिर सृष्टि चलेगी कैसे ?"

दार्शनिक की मूर्खता पर थोड़ा-सा मुस्कराकर श्रीमती की भारी भरकम सहेली ने सिर से खिसक गए साड़ी के आंचल को फिर से अपने स्थान पर जमाते हुए कहा—"यह भी कहीं हो सकता है ?"

दार्शनिक की बात शायद यों ही उड़ जाती परन्तु विशालाक्षी देवी ने पूछ लिया—"क्यों साहब, विवाह न हो तो फिर हो क्या ?"

इतिहासज्ञ बीच में कूद पड़े—"विवाह होता क्या है ?"

श्रीमती जी की सहेली ने अपने भारी शरीर को हिला, विस्मय सूचक संकेत से नेत्र घुमाकर पूछा—"विवाह क्या होता है ?………विवाह तो होता है………जैसे कि विवाह होता है………जैसे कि विवाह होता है।………सब जानते हैं…विवाह क्या होता है ?"

दार्शनिक की हंसी फूट जाना चाहती थी, इसलिये उन्होंने झट से सिगरेट थामे अपना हाथ होंठों के सामने कर लिया। हंसी को खांसी में बदल कर इतिहासज्ञ ने कहा—"हां विवाह तो होता ही है परन्तु उसका तात्पर्य है घर बसाना। घर बसाया जाता है, जीवन के साधनों का संचय करने के लिये। मनुष्य जितना उपयोग में लाता है उतना ही उत्पन्न नहीं करता, उस से कहीं अधिक उत्पन्न करता है। इन संचित साधनों को अपनी सन्तान को सौंप देने का अरमान रखता है। इन संचित साधनों का उत्तराधिकारी होता है पुरुष संतान। परिवार में जो 'पुरुष' संतान पैदा होते हे वे परिवार के उत्तराधिकारी और उसे चलाने वाले होते हैं और 'स्त्री' सन्तानें दूसरे परिवार चलाने के लिये दे डाली जाती हैं। वंश के क्रम को आगे जारी रखने के लिए यह उत्तराधिकारी 'पुरुष' संतान एक 'स्त्री' लाता है ताकि वह अपने आगे एक और संतान पैदा करे, जो वंश की नाम लेवा हो। क्यों साहब ठीक कहा………?"—इतिहासज्ञ ने पूछा।

"हां तो फिर क्या हुआ ?"—श्रीमती की सहेली ने हाथ हिलाकर उत्तर दिया। विशालाक्षी देवी चुपचाप तन्मयता से देखती रहीं, मानों प्रत्येक शब्द को पकड़ते जाना चाहती हैं।

"होगा यह"—बहुत शान्ति से इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया, "पुरुष ही परिवार का मूल दण्ड या प्रधान व्यक्ति होगा और शेष वस्तुयें उसकी सहायक होंगी। हमारे मौजूदा समाज में जीवन का आधार है सम्पत्ति!………या कह दीजिये, पैदावार के साधन! संक्षेप में आप उसे पूंजी भी कह सकते हैं। इस पूंजी या सम्पत्ति की पैदावार और नियंत्रण समाज में व्यक्तिगत रूप से और वंश के क्रम से होता है और उसका मूल दण्ड पुरुष है, स्त्री आवश्यक होकर

वाहर से आती है। जिस समाज में पूंजी और सम्पत्ति की मिल्कियत व्यक्तिगत रूप में और विरासत से होगी वहाँ प्राधान्य पुरुष का होगा या नहीं ?"

श्रीमान् के सहायक को जैसे नीचे से कुछ काट गया। उछल कर बोले—"वाह साहब, आप इसमें समाजवाद क्यों घुसेड़ते हैं ?"

"समाजवाद का प्रसंग यों आता है"........इतिहासज्ञ ने भी उसी कड़वाहट से उत्तर दिया......."कि समाज में जीवन का क्रम और आधार व्यक्तिगत बनाये रखने से यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक मनुष्य समाज के माने क़ानून के अनुसार किसी न किसी व्यक्ति का उत्तराधिकारी होकर जन्म ले। इस नियम की परवाह किये बिना जो सन्तान पैदा हो जाती है वह समाज में किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकती। समाज उस सन्तान का कोई स्थान स्वीकार नहीं करता। विवाह के रूप में ऐसा नियम बनाया गया कि प्रत्येक सन्तान के निर्वाह का उपाय उसके जन्म से पहले ही तैयार रहे और साधनहीन लोग पैदा होकर जीवन-निर्वाह के साधनों के लिये बलवा और झगड़ा न करें। विवाह, सदाचार और पतिव्रत धर्म के रूप में स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध के चारों ओर चाहे जितना भी धर्म लपेटा जाय उसके मूल में है एक ही बात, मनुष्य के लिए जीवन-निर्वाह के उपायों की व्यवस्था करना, रोटी का प्रबन्ध करना और मनुष्य की सन्तानोत्पत्ति को सीमा में रखना.... "

श्रीमान् के मित्र ने इतिहासज्ञ की बात काट दी—"अरे आप लोग चाहे जो कहिये परन्तु यह तो मानना पड़ेगा कि हमारे बुजुर्गों ने बुद्धिमानी की, चाहे धर्म का ही रुप दिया हो। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य समाज का जीवन असम्भव हो जाता !"

बीच में टोक दिये जाने से इतिहासज्ञ उत्तेजित हो गये—"आप बात बिना सुने ही जवाब दे देते हैं... ... पहले सुन तो लीजिए ! प्रश्न यह नहीं कि हमारे बुजुर्गों ने बुद्धिमानी की या नहीं ? मान लिया, वे बड़े बुद्धिमान थे। सवाल तो यह है कि हमें क्या करना है ? जीवन-निर्वाह के लिये व्याह और उत्तराधिकार द्वारा खान्दानी सम्पत्ति बना, व्यक्ति के हितों के अनुसार उन्हें व्यक्ति के नियंत्रण में रखकर, किसी समय समाज में व्यवस्था की जो प्रणाली कायम की थी, वह अब कारगर नहीं हो रही.......।"

हाथ का अंगूठा दांत से काटते हुए श्रीमान ने प्रश्नात्मक भाव से इतिहासज्ञ की ओर देखा। उत्तर देने के लिए दोनों हाथ फैला इतिहासज्ञ बोले —"आप देखते हैं इस समय ६६ फीसदी व्यक्तियों के पास जीवन-निर्वाह के साधन नहीं रहे। वे पैदावार पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा के कारण किलबिला रहे हैं। विवाह व्यक्तिगत या पारिवारिक रूप से जीवन-निर्वाह के उपायों को पैदा करने वाली व्यवस्था की रक्षा करने का साधन था सो वह व्यवस्था तो अब रही नहीं!"

श्रीमान ने प्रश्नात्मक भाव से आँखें फैलाकर इतिहासज्ञ की ओर देखा मानो पूछ रहे हों, सो कैसे ?

देखिये न, पैदावार के साधनों को मशीन का रूप देकर पैदावार का तरीका बदल गया है। इस ढंग में हजारों आदमी एक साथ पैदावार करते हैं और वह पैदावार हजारों लाखों के काम आती है तो पैदावार का व्यक्तिगत और पारिवाकि स्वामित्व कैसे चल सकता है ? यह व्यवस्था पैदावार के फल को, पैदावार के काम में परिश्रम करने वालों को नहीं बाँटती। इस पैदावार के मूल्य को कुछ एक लोग ही झपट लेते हैं। जरूरत है कि पैदावार के ढंग में आ गये परिवर्तन के अनुसार ही बंटवारे का ढंग भी निश्चित किया जाय........"

बीच में टोककर दार्शनिक बोले—"समाज के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक पदार्थों की उत्पति के तरीके में समाजवाद आ गया है, सब झंझट पैदा होता है उसे स्वीकार न करने में........" इन्हें टोक दिया विशालाक्षी देवी ने—

"तो इससे स्त्रियों की स्थिति का क्या मतलब ?'

कुछ निराशा के से स्वर में इतिहासज्ञ ने उनकी ओर देखकर पूछा— "स्त्रियों की स्थिति का क्या मतलब ? क्या स्त्रियाँ समाज का अंग नहीं ? समाज जब वैयक्तिक और पारिवारिक सम्पत्ति की प्रणाली या पूंजीवाद पर चलेगा तो स्त्री को भी मजबूरन इस व्यवस्था को चलाने का साधन बनकर रहना पड़ेगा। जैसे समाज की आरम्भ की अवस्था में मनुष्य, जब वह खेती करना नहीं जानता था, एक पशु पर अपने जीवन निर्वाह के साधन लादे

फिरता था, उसी प्रकार व्यक्तिवाद या पूंजीवाद में परिवार का स्वामी पुरुष स्त्री पर अपनी गृहस्थी लादकर रहता है....।

श्रीमान के सहायक ताली बजाकर हँस दिए—"स्त्री आखिर पशु ही बनी न ?"

श्रीमती जी ने क्रोध से मुख फेर लिया और उनकी भारी भरकम सहेली ने क्रोध में प्रत्युत्तर दिया—"पशु तो पुरुष हैं।"

अपनी व्याख्या के लिए स्त्रियों से कृतज्ञता पाकर इतिहासज्ञ ने विशालाक्षी देवी की ओर देखा। वे क्रोध न दिखा बात को समझने का यत्न कर रही थीं—"तो फिर...... ?" इन्होंने प्रश्न किया।

"तो फिर यह कि व्यक्तिवाद और पूंजीवाद की प्रथा हट जाने पर ही स्त्री पर से परवशता का बन्धन हट कर, वह आत्मनिर्भर हो सकेगी। समाज के पुरुषों की ही तरह उन्हें भी स्वयम् कमा सकने का अवसर होगा।"—विशालाक्षी देवी हाथ के बटुए को जोर से दबा अधमुंदी आँखों से स्त्री की स्वतंत्रता की कल्पना का सुख लेती रह गई। शायद उन्हें दिखाई दे रहा था—बग़ल की छोटी सी छतरी को हिलाते हुए वे बड़ी तेजी से किसी दफ्तर की ओर चली जा रही हैं जहाँ वे बड़े साहब की कुर्सी पर जा बैठेंगी। घर की सफ़ाई और बच्चे की रुलाई की उन्हें कोई चिन्ता नहीं। इनके इस सुख-स्वप्न को तोड़ डाला श्रीमान के मित्र ने। पूछ बैठे, "क्यों साहब, आप परिवार को ही तोड़ डालना चाहते हैं ? यानी सर्वनाश हो जाय। परिवार न रहेगा तो रहेगा क्या ?"

दार्शनिक की सहायता के लिए इतिहासज्ञ बोले—"परिवार का नाश कर देने के लिए कौन कहता है ?...... कहना तो यह है कि आज आपके देश और समाज में दस-पांच परिवार जीवन के सब साधन समेट बैठे हैं और शेष करोड़ों परिवार साधनहीन हो मोहताज बन रहे हैं, इसके स्थान पर पैदावार के साधनों को समाज के सब परिवारों की साँझी सम्पत्ति बना दीजिए ! यानी आर्थिक दृष्टि से सम्पूर्ण समाज एक परिवार हो और स्त्री पुरुष सन्तान की दृष्टि से अपने परिवार आप जैसे चाहें बनाए रहें........।"

दार्शनिक अपनी बात स्वयम् ही कहना चाहते थे इसलिए फिर बोले—

"सर्वनाश तो साहब अब हो रहा है। परिवार तो आपने बना रखे हैं परन्तु उत्तराधिकार या विरासत के रूप में निर्वाह के साधन उनके पास कहाँ हैं ?"

"समाज में तो सब कुछ है और जितना है उससे बहुत अधिक हो सकता है तो फिर व्यक्ति को साधनहीन परिवार की हण्डिया में बंद रखकर उसका दम घोटने से लाभ ?"

सबको चुप होते देख श्रीमतीजी ने मुस्कराकर प्रश्न किया—"अजी परिवार नहीं होगा तो बच्चों को पालेगा कौन ?"—और श्रीमान के मित्र भाभी की बात में संशोधन करने के अधिकार से हँसकर बोल उठे, "बच्चे होंगे कहाँ से ?"

इस असुविधाजनक प्रश्न का उत्तर दिया इतिहासज्ञ ने—"जब स्त्रियाँ होंगी और पुरुष होंगे तो बच्चे तो हो ही जायेंगे परन्तु वे बच्चे माँ-बाप के अपराध का दण्ड नहीं बनेंगे ! माँ-बाप की साधनहीनता के कारण कुचले नहीं जायेंगे। वे सम्पूर्ण समाज-परिवार की सन्तान होंगे और उन बच्चों के लिए समाज की शक्ति में जो कुछ करना सम्भव होगा, किया जायगा……।"

उत्साह और आवेश से इतिहासज्ञ व्याख्यान देने के ढंग पर बोलने लगे थे। बात कहाँ से कहाँ पहुंच रही है, ऐसी जगह जहाँ वूमेंस लीग के प्रस्तावों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, यह देख विशालाक्षी देवी बोलीं—"प्रश्न तो है कि भारत के मौजूदा समाज में स्त्रियों पर अन्याय न हो, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार हो !"

"यह हो जो नहीं सकता।"—दार्शनिक ने अपना सिगरेट नीचे करते हुए उत्तर दिया।

कुछ बिगड़ कर श्रीमती की सहेली ने कहा—"हो कैसे नहीं सकता; विलायत में है।"

"कैसे कहती हैं आप विलायत में है ?" दार्शनिक ने अधिकार के स्वर में पूछा।

"वाह, सब कहते हैं, वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की दास थोड़े ही हैं। वे सब काम करती हैं !"—श्रीमती की सहेली ने उत्तर दिया और अपने भारी

शरीर को कुर्सी की पीठ पर निढाल छोड़, विजय की मुद्रा से निश्चिन्त हो गई।

दार्शनिक तेज हो गये और बोले—"कहते होंगे जिनके आँखें नहीं। स्त्रियों को भीड़ में जगह दे दी जाती है, या स्त्री का कोट पति उठा कर चलते हैं, इसलिए स्त्रियों को स्वतंत्र या उनका समान अधिकार समझ लिया जाय? मुआफ कीजियेगा, हमने देखा है, वहुत से मेम और साहब लोग अपने कुत्तों को गोद मे उठाकर चलते हैं, मोटर में बराबर की सीट पर तो सभी बैठा लेते हैं। इससे क्या उनके कुत्ते स्वतंत्र समझे जायेंगे ?"

श्रीमती की सहेली ने क्रोध में अपने चारों ओर देखकर पूछा—"हमारा पर्स कहां गया ?" मानो अब किसी भी हालत में वे बैठ नहीं सकेंगी। श्रीमान और उनके साथी इतने प्रसन्न हो रहे थे कि किसी भी प्रकार सभा भंग कर देना उन्हें मंजूर न था। ऊंचे स्वर में उन्होंने आग्रह किया, "अजी बैठिए, अजी बैठिए अभी तो देखिए पानी कितनी जोर से पड़ रहा है"— शोर मच गया।

इस सब शोर की कुछ भी चिन्ता न कर दार्शनिक कहते चले गये—"योरुप में स्त्रियों को खाक स्वतंत्रता और समान अधिकार है। पुरुषों के बराबर मेहनत करके भी उन्हें पुरुषों के बराबर मजदूरी नहीं मिल सकती। बीसियों पेशे ऐसे हैं, जिनमें उन्हें काम करने का अवसर नहीं। सम्पत्ति की वे उत्तराधिकारी नहीं हो सकतीं। वंश पुरुष के ही नाम से चलता है, स्त्री के नाम से नहीं। माना कुछ स्त्रियां व्याह न करके स्वतंत्र रोज़ी चलाती हैं परन्तु ऐसी स्त्रियों को सदा ही बुढ़ापे का भय सताता रहता है कि जब हाथ पैर नहीं चलेंगे तब क्या होगा ? अपनी इच्छा से सन्तान की माता बनने का अवसर या अधिकार उन्हें नहीं""। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि सन्तानोत्पत्ति स्त्री-पुरुषों का एक बहुत बड़ा काम और अधिकार है। पुरुषों की सम्पत्ति बने बिना यह अधिकार योरुप की स्त्रियों को भी नहीं और यदि कोई स्त्री ऐसा साहस करे भी तो संतान के बोझ को सम्भालेगी ? खास कर प्रसव के समय से पहले और बाद तीन चार मास उसकी जिम्मेवारी कौन लेगा ? इतनी स्वतंत्रता इन्हें जरूर है कि वे तालाक़ दे सकती हैं। यह कौन बड़ी स्वतंत्रता है ? इस पुरुष को मालिक न समझा दूसरे को समझ लिया !

समस्या को व्यक्तिगत रूप से देखने से काम नहीं चलता उसे सामाजिक रूप से ही देखना चाहिए।"

इस संकोच के विषय को भी दार्शनिक इसी तेज़ी से कह गये कि देवियों को नाक-भौं चढ़ाने का अवसर न मिला बल्कि विशालाक्षी देवी ने पूछा—"तो क्या समाजवाद में स्त्रियों की यह सब कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी ?"

"बेशक !"— तपाक से दार्शनिक ने उत्तर दिया, "स्त्री जिस परिवार का अंग होती है, वह परिवार स्त्री की सब कठिनाइयों में सहयोग देता है या नहीं ? उन्हें झेलता है या नहीं ? इसी प्रकार स्त्री जब समाज-परिवार का अंग होगी और समाज को नई संतान के रूप में अपनी रक्षा करनी होगी, समाज सब कुछ झेलेगा ही। अन्तर इतना है, आज स्त्री आर्थिक रूप से एक व्यक्ति पर निर्भर रहने को मजबूर है, आर्थिक रूप से उसकी स्वतंत्र या व्यक्तिगत हैसियत नहीं है। समाजवाद में स्त्री की आर्थिक हस्ति पुरुष के समान ही व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र होगी और सामाजिक रूप से वह पुरुष के समान ही समाज पर निर्भर करेगी ?"

"क्यों साहब, समाजवाद में तो स्त्रियाँ सामाजिक सम्पत्ति होंगी न ?" श्रीमान् के सहायक ने संकेत पूर्ण मुस्कराहट से होंठ काटते हुए पूछा— "स्त्रियों के लिए तो और भी मुसीबत है, कढ़ाई से उछलीं, भट्टी में गईं ?"

विशालाक्षी देवीजी ने चौंककर उनकी ओर देखा। इतिहासज्ञ अपने विचारों का प्रभाव इन देवीजी पर पड़ते देखकर संतुष्ट हो रहे थे इनके यों चौंकने से वे घबराये, तुरन्त बोल उठे—"समाजवाद स्त्री को स्वतंत्र व्यक्ति मानता है, सम्पत्ति नहीं इसलिए वह न तो व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जा सकेगी न सामाजिक !"

अपनी की हुई सब नेकी का फल यों नदी में बहा जाता देख श्रीमान बहुत संकोचपूर्ण ढंग से बोले और बोले भी तो अपने मतलब की ही बात। उन्होंने कहा—"देखिये आपने कहा था न कि समाज के लिए आवश्यक पैदावार के काम में पुरुष अधिक काम कर सकता है।.........तो क्या समाजवाद में यह बात न रहेगी ?"

ऐसी ला जवाब बात कह देने के भरोसे अभी वे अपनी गर्दन ऊँची भी न कर पाये थे कि तड़ाक से दार्शनिक ने उत्तर दिया—"शारीरिक शक्ति का इतना महत्व था मनुष्य समाज की आरम्भिक अवस्था में। आज मशीन का जमाना है। पुरजा घुमाकर इंजन को सभी समान रूप से चला सकते हैं। मशीनगन की ताकत स्त्री के हाथ से चलने पर कम नहीं हो जायगी। स्त्री की शारीरिक निर्बलता को मशीन दूर कर चुका है। रूस में स्त्रियां क्या नहीं कर रहीं ? और फिर यदि परिश्रम के काम में स्त्री कहीं पुरुष से पौन हो भी गई तो सन्तान प्रसव का जो काम समाज के लिये वह करती है उसे भी तो नहीं भुला दिया जा सकता ? सामाजिक दृष्टि से उसका महत्व पुरुष से कम नहीं !"

"यानी भारत भी रूस हो जाय ?"—श्रीमान के सहायक ने प्रश्नात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए पूछा और फिर सब लोगों की ओर हाथ फैलाकर कहा, "साहब यह चाहते हैं रूस की सभ्यता !""जिसमें शादी-ब्याह कुछ न हो !""""जो चाहे जिसकी कमर में बांह डालकर चल दे।"

श्रीमतीजी और उनसे अधिक उनकी भारी भरकम सहेली यों सकपका गई, मानों किसी की बांह उनकी कमर पर आया ही चाहती है ! दोनों हाथ मलते हुए श्रीमती जी की सहेली ने कहा– "हाय, राम राम !" और श्रीमती जी गाल पर उँगली रख आशंका से दार्शनिक की ओर देखने लगीं।

इतिहासज्ञ ने अपने स्वर को खूब ऊँचा कर कुर्सी की गद्दी पर घूंसा मारते हुए कहा—"बिलकुल ग़लत कहते हैं आप ! रूस में ब्याह रजिस्ट्री से होता है। आपको शायद मालूम नहीं कि रूस भर में कोई वेश्या नहीं ! कोई स्त्री लाइसेंस लेकर वेश्यावृत्ति नहीं कर सकती।"

श्रीमान जी के सहायक और भी ऊँचे स्वर में बोले—"अरे वहां लाइसेंस की जरूरत ? वहाँ तो सभी वैसे ही हैं।"

"हाय हाय, गाज पड़े ऐसी सभ्यता पर।"—श्रीमतीजी ने हाथ की उँगलियां छिटकाकर कहा।

दार्शनिक ने आगे बढ़कर पूछा—"वेश्या से आपका मतलब ?" श्रीमान जी के मित्र बिगड़ उठे बोले, "आप तो दूध पीते बच्चे हैं न ? अभी आप पूछ रहे थे ब्याह का मतलब ? अब आप पूछ रहे हैं, वेश्या का मतलब ?"

चारों ओर फूट पड़ी विद्रूप की हंसी की कुछ परवाह न कर दार्शनिक वेश्या का मतलब स्वयम् ही बताने लगे—"वेश्या कहते हैं उसे, जो अपना पेट भरने के लिये अपना शरीर बेचे ! ऐसा करने को स्त्री तभी विवश होती है जब जीवन-रक्षा का कोई दूसरा उपाय उसके पास न हो। मानते हैं आप ?"

"जी………"—धमकी के स्वर में श्रीमान के मित्र ने हाथ की मुट्ठी से ठोड़ी को सहारा देकर स्वीकार किया।

अपनी बात मनवा लेने के संतोष में अपनी पीठ सोफा की पीठ से सटा कर दार्शनिक बोले—"तो जनाब रूस की समाजवादी सरकार इस बात के लिये जिम्मेदार है कि देश भर में कोई भी पुरुष या स्त्री काम करने की इच्छा होने पर बेरोजगार नहीं रह सकती इसलिये वहां किसी भी स्त्री को जिन्दगी की जरूरियात पूरी करने के लिये अपना शरीर किराये पर चढ़ाने की जरूरत नहीं हो सकती। किसी भी रूप में स्त्री पुरुष का लोहा मानने के लिये मजबूर नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में स्त्री जो कुछ करेगी या तो प्रेम के कारण या अपने निजी संतोष के लिये करेगी और उसके लिये जिम्मेवार होगी।"

विशालाक्षी देवी बहुत देर से चुपचाप तन्मयता से सुन रही थी, संतोष सूचक एक लम्बी 'हूं' उनके मुख से निकल गई तब उन्होंने अचकचा कर देखा कि किसी ने यह बात भांप तो नहीं ली।

श्रीमान के मित्र झुंझला उठे – "वाह साहब खूब रही……स्त्रियां घंटे-घण्टे भर में प्रेम बदलती फिरें !"

उत्तर देने के लिए दार्शनिक अपना मुंह खोल सकें इससे पहले ही श्रीमती ने दोनों हाथ मलकर कहा—"हाय-हाय; आग लगे ऐसे प्रेम को !" और विशालाक्षी देवी विस्मय की विमूढ़ता में दार्शनिक के उत्तर की आशा में उनकी ओर देखने लगीं।

अन्तिम दाँव लगा देने वाले जुआरी की बे-परवाही से दार्शनिक ने कहा-"यदि स्त्री किसी को धोखा न देकर अपने हृदय की तृप्ति के लिए घण्टे भर प्रेम करना चाहती है तो वह कुलटा है और यदि वह अपने जीवन और अपने संतान के जीवन-निर्वाह का कोई दूसरा उपाय न देख, या समाज के भय से

अपना शरीर जन्म भर किसी पुरुष की आवश्यकता पूर्ति के लिए दे देती है तो वह सती है ?........आप उस लड़की को क्या कहेंगे जो एक पुरुष को जाने पहचाने बिना, उसे सौंप दिये जाने पर भय से या दूरदर्शिता से आंसू बहाती चल देती है ? क्या अठारह-बीस बरस की लड़की जानती नहीं कि उसे किस काम में लाया जायगा ? लड़की जानती है मां-बाप आयु भर उसके जीवन निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। वह यह भी जानती है कि किसी की सम्पत्ति उसे बना दिया जा रहा है और यदि वह उस पुरुष के अलावा किसी दूसरे की ओर आंख उठाती है तो वह निराश्रय हो जायगी। फटी जूती की तरह उसे कबाड़ के ढेर पर फेंक दिया जायगा। इस भय से जिस तरह का जीवन वह व्यतीत करती है, उसकी महिमा गाई जाती है, उसे साध्वी, पतिव्रता और सती कहकर पुरुष पूजा करते हैं ताकि शेष स्त्रियां भी इस प्रकार के सम्मान के लोभ में पुरुषों की गुलामी को चुपचाप निभायें और वह स्त्री जो अपने हृदय के प्रेम या आकर्षण के प्रति ईमानदार रहकर किसी पुरुष को चाहती है, कुलटा है, व्यभिचारिणी है। मजा यह है कि ऐसी स्त्रियां, जो पुरुषों की गुलामी से छूटने का दम भरती हैं, पूर्णतः एक ही पुरुष की सम्पत्ति बन कर साध्वी और पतिव्रता कहलाने में अपना सम्मान समझती हैं...।"

सब लोग दार्शनिक की इस आवेगमय व्याख्या को स्तब्ध होकर सुने जा रहे थे। श्रीमती की सहेली ने शायद समझा कि स्वतंत्रता और समानता का दावा करने वाली स्त्रियों की पतिपरायणता पर हमला हो रहा है और सब कुछ सह लेना शायद उसके लिए सम्भव होता परन्तु स्त्री के शरीर पर पति के एक छत्र अधिकार के प्रति शंका की बात सहन करना उनके लिए सम्भव न था। शरीर को सम्पूर्ण शक्ति से हिलाकर वे उठ खड़ी हुई और बिगड़ कर बोलीं—"हां पुरुष स्वयम् बड़े अच्छे होते हैं न ?....बड़े सच्चरित्र होते हैं न ?" क्रोध में तकल्लुफ से घर जाने की आज्ञा मांगने का भी ध्यान न रहा। अपने ड्राइवर का नाम पुकारती हुई वे दरवाज़े की ओर बढ़ चलीं।

बहस में उतार आ गया देख इतिहासज्ञ बोले—आप जानते हैं, तलाक सब देशों से कम रूस में होते हैं! यौन रोग वहां सब देशों से कम हैं। समाजवाद कायम होने से पहले यह रोग सब देशों से अधिक थे। यह दोनों बातें किसी भी समाज के यौन आचार की सबसे बड़ी कसौटी हो सकती हैं।

वहस अवश्यकता से अधिक हो चुकी थी। अवसर देख दूसरे लोग भी उठ खड़े हुए। वहस से यदि अभी तक कोई थका नहीं था तो दार्शनिक और इतिहासज्ञ ; कुछ अधिक सुन पाने की इच्छा शेष थी तो केवल विशालाक्षी के जिज्ञासु नेत्रों में। उनकी ओर देखें, किसी दूसरे के सुनने न सुनने की पर्वाह न कर दार्शनिक ने कहा—"सच वात तो यह कि स्त्रियां स्वतंत्रता नहीं चाहतीं। स्वतंत्रता लेने से सिर पर आ जाता है उत्तरदायित्व, दूसरे का भरोसा करने का अवसर नहीं रहता। स्त्रियां भारत के लिवरल कहलाने वाले राजनैतिक दल की भांति हैं जो अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता, जिम्मेवारी और स्वराज्य नहीं मांगते मांगते हैं केवल सहूलियतें। इसी प्रकार भारत की स्त्रियां भी स्वतंत्रता और जिम्मेवारी नहीं चाहतीं। चाहतीं हैं केवल रियायतें और सहूलियतें।"

इस लांछना का कोई उत्तर विशालाक्षी देवी ने न दिया। सभी लोग उठ खड़े हुए थे इसलिए उत्तर-प्रत्युर के लिये अवसर भी न था। संकुचित से स्वर में उन्होंने दार्शनिक और इतिहासज्ञ से पूछा—"आप लोगों को फुर्सत और सुविधा हो तो कभी हमारे यहां आइये न ?"

"हां जव कहिये······ ?" उत्साह से दार्शनिक कहने जा रहे थे कि उन के वगल में एक गुप्ती घूंसा मारकर इतिहासज्ञ ने उत्तर देने की जिम्मेवारी अपने हाथ लेली और वोले—"देखिये संध्या को अक़सर वहुत जगह मिलना-जूलना रहता है। पहले से मालूम रहने से किसी दिन हो सकता है······।"

"तो फिर अगले शुक्रवार की संध्या को पांच वजे चाय आप हमारे यहीं ही पीजिये, आप भी आइये।"—दार्शनिक की ओर भी देखते हुए उन्होंने कहा। फिर कोई ग़लती न हो जाय, इस भय से दार्शनिक केवल सिर हिलाकर रह गये।

निमंत्रण ले, मकान से अपने वसेरे पर लौटते हुए इतिहासज्ञ ने दार्शनिक को डांटा—"वड़े पोंगे हो जी तुम ! ऐसे भुक्खड़ों की तरह कहीं निमंत्रण स्वीकार किये जाते हैं ?····वेटा, ऐसे भूखे वनोगे तो कोई दरवाजे पर भी फटकने नहीं देगा ? रोव रखा जाता है हमेशा ! चार दफे····न····न····न····न करके तव हां !·········· ····समझे ?"



भगवान के कारिन्दे

चक्कर-क्लब के दार्शनिक एक अजीब मुसीबत में फँस गये। मुसीबत भी ऐसी कि उसकी कल्पना कर पाना भी कभी सम्भव न था। उनको उस मुसीबत के लिये दोष भी किसको दिया जाय? एक तरह से दार्शनिक को चाहिये था कि उन्हें मुसीबत में फँसाने वालों का धन्यवाद देते ठीक उसी तरह, जैसे कि तांगे वालों के मुंह से अक़सर सुनते हैं—"आशिके नामुराद को लाज़िम है, ये दुआ करे। जिसने दिया है दर्दे दिल, उसका खुदा भला करे!" कारण यह कि उन पर मुसीबत ढाने वालों के हृदय में उनके प्रति कल्याण की ही कामना थी। उस प्रेरणा का आधार हिंसा नहीं अहिंसा ही था।

दार्शनिक को दर्दे-दिल तो हुआ नहीं, हुआ दर्दे सिर। यह भी विश्वास करना ही पड़ेगा कि दार्शनिक को दर्दे सिर देने वालों का भला खुदा ने अवश्य किया होगा।

मामला यों हुआ कि भद्रजनों के जिस मुहल्ले में पढ़ाई रुपया माहवार किराये पर कोठड़ी लेकर दार्शनिक रहते हैं, उनमें भगवान की इच्छा से संसार की भलाई और परोपकार करने की भावना प्रबल रूप से जाग उठी। संसार में फैलते दुख-दारिद्र्य और कष्ट का निवारण करने के लिए और फिर इस दुख मूल और नश्वर जगत् से छुट्टी पाने के बाद, भगवान की कृपा से अनन्त सुख पाने के लिये, सज्जनों ने भगवान् की कृपा पाने का निश्चय किया। भगवान के इन भक्तों ने जब यह समझ लिया कि संसार के सब दुखों का मूल भगवान

को भुला देना ही है तो उन्होंने भगवान को याद करने का प्रवन्ध किया। यह प्रवन्ध ढिलमिल उत्साहहीन ढंग से नहीं, विशेष उत्साह-पूर्ण तरीके से वड़े परिमाण में हुआ।

मोहल्ले के मन्दिर में कीर्तन होने लगा। रात के ग्यारह वजे तक कीर्तन होना मामूली वात है। मंगलवार की संध्या को हनुमानजी के भोग के कीर्तन से और शनिवार की रात, अगले सुवह जल्दी उठने की कोई चिन्ता न होने से, यदि शुभ कार्य में रात का एक भी वज जाय तो साधारण-सी वात थी। दार्शनिक जैसे सांसारिक वुद्धि के एक-आध आदमी ने दवे स्वर में अपना संकट जताने का यत्न किया कि मुहल्ले में कीर्तन के उत्साह के कारण नींद नहीं आ पाती और सुवह तड़के नौकरी की ड्यूटी वजा सकना कठिन हो जाता है। परन्तु संसार का भला करने पर कमर वांधे कीर्तनकारियों की लाल आँखें देख उन्हें चुप हो जाना पड़ा। इस प्रार्थना का परिणाम यह हुआ कि कीर्तन का स्वर पहले से भी ऊँचा हो गया। घड़ियाल पहले की अपेक्षा अधिक समय के लिये और अधिक वल से पीटे जाने लगे।

कीर्तन करने वालों में कुछ व्यक्ति असाधारण रूप से धर्मप्राण थे। कीर्तन के कारण उनके कंठ भर्राये रहते, उनींदी आँखें लाल रहतीं। इनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति की वात भूल, सत्संग में सम्मिलत होने वाले सज्जन इनका विशेष सम्मान करते। दिन में वीसियों वार उन्हें 'जयरामजी' की जाती। जयरामजी की मात्रा के साथ ही इन सज्जनों का धर्मोत्साह वढ़ता जाता। इन उत्साही सज्जनों ने कहा—"इतना वड़ा मुहल्ला है परन्तु क्या वात है कि सत्संग में मन्दिर भी पूरा नहीं भर पाता। मुहल्ले के प्रत्येक व्यक्ति को कीर्तन के सत्संग में सम्मिलित होना चाहिये!"

कीर्तन सभा का यह निर्णय ले मुहल्ले की पंचायत जव दार्शनिक तक पहुँची तो उन्होंने उत्तर दिया—"भगवान की भक्ति भी क्या जवरन कराई जा सकती है?"

एक सज्जन जिनके माथे पर—रविवार के दिन दफ्तर में साहव का सामना होने का भय न होने के कारण—पर्याप्त चंदन पुता हुआ था, आगे वढ़कर वोले—"भक्ति जवरन करवाने का क्या मतलव? यदि किसी का

पड़ोसी ग़लत राह पर चलता हो तो क्या उसे ठीक राह पर नहीं लाना चाहिए ?"

दार्शनिक को चारों ओर से घेर कर खड़े सज्जनों ने एक स्वर से कहा—"हां-हां क्यों नहीं ? ठीक तो है ! एक पापी के बोझ से नाव डूब जाती है। भगवान की भक्ति में ज़बरदस्ती कैसी ? वह तो सबको करनी ही चाहिये। उसमें तुम्हारा ही भला है।"

चारों ओर खड़ी भीड़ को कतराई दृष्टि से देख दार्शनिक ने पूछने का साहस किया—"हमारा उसमें क्या भला है पण्डितजी महाराज ?"

इस विचित्र और अप्रत्याशित प्रश्न से चौंककर चन्दन-तिलकधारी सज्जन ने माथे पर अनेक त्योरियां डाल, उपस्थित जनता की सहानुभूति और सहायता अपनी ओर करने के लिये पुकारा—"तुम्हारा क्या लाभ है ? अरे जो सबका लाभ है सो तुम्हारा लाभ है। जिस भगवान ने तुम्हें जीवन दिया, इस सृष्टि को बनाया और इसका पालन करता है, उस भगवान की भक्ति करने से लाभ नहीं ?......दुख में सब सुमिरन करे, सुख में करे न कोय। जो सुख में सुमिरन करे, तो दुख काहे को होय ? भगवान को भुला देने के पाप का ही तो फल है कि सब दुख होते हैं........."दोनों बाहें फैलाकर उन महाशय ने कहा।

"भगवान का स्मरण करते रहें तो दुखी नहीं होंगे ?"—दार्शनिक ने पूछा।

दुखी काहे को होंगे ? भगवान सर्वशक्तिमान है ? अपने भक्तों के दुख वे सदा दूर करते हैं। वे बड़े दयालु हैं। माता, पिता, पुत्र, दोस्त, मित्र का सब नाते झूठे हैं। भगवान ही एकमात्र सच्चा है।"—उन तिलकधारी महोदय ने दार्शनिक को आश्वासन दिया।

"भगवान सर्वशक्तिमान और दयालू है तो यह सब दुख-दारिद्रय, अकाल पड़ना, भूकम्प आ जाना, युद्ध में लाखों आदमियों का संहार अपनी शक्ति से वे क्यों नहीं रोकते ?"—दार्शनिक पूछ बैठे।

एक दूसरे सज्जन ने उत्तर दिया— "यह सब तो हमारे ही पापकर्मों का फल है ? लोग पाप न करे तो यह सब दुख काहे को हों ?"

"यदि अपने कर्मों से ही सुख-दुख होता है तो भगवान का नाम रटने की अपेक्षा सुख देने वाले काम ही क्यों न किये जांय ? सुख-दुख अपने ही किये का फल है तो भगवान करते क्या हैं ?"—उपस्थित लोगों की सहनशीलता से साहस पाकर दार्शनिक बोले ।

"भगवान कर्मों का फल देते हैं ।"—एक सज्जन ने उत्तर दिया, "फल देते हैं ?" दार्शनिक ने फिर पूछा, "भैया जब करनी अपनी है तो उसमें भगवान क्या देते हैं ? जब राई-रत्ती कर्म का ही फल मिलता है तो उसमें भगवान की दया का क्या सवाल ? और उनकी भक्ति से लाभ क्या ? यदि भगवान की भक्ति करने से बिन जोते खेत में फसल हो सके, पड़ता हुआ ओला भगवान का नाम लेने से थम जाय, जख्म लगने पर भगवान का नाम लेने से भर जाय तो दुनियां को भगवान की भक्ति का उपदेश देने का कष्ट आपको करना न पड़े । लोग दिन भर भगवान की ही भक्ति किया करें ।"

दाईं ओर से अपने मित्र इतिहासज्ञ को कामरेड और दूसरे दो एक कांग्रेसी महाशयों के साथ आते देख साहस से स्वर ऊंचा कर दार्शनिक बोले,—"आप कहते हैं, भगवान सर्वशक्तिमान है, उनकी इच्छा पर संसार का बनना-बिगड़ना निर्भर करता है और तमाशा यह है कि भगवान की वकालत और सिफारिश करने आप आये हैं । यदि भगवान को ऐसी कुछ ज़रूरत थी तो अपना संदेश वे स्वयम हमें भेज देते !"

मोहल्ले के एक सज्जन ने चिढ़कर उत्तर दिया—"ऐसी ही जरूरत भगवान को पड़ी है न तुम्हें सन्देश भेजने की ? भगवान को भूलोगे, खुद दुख भोगोगे ; नरक में जाओगे ।"

बहस का मैदान तैयार देख इतिहासज्ञ कूद पड़े, बोले—"अजी साहब, भगवान को जरूरत न सही. आपको तो थी ही बल्कि भगवान से अधिक दया आपके ही हृदय में है कि भटकते को राह दिखाने तो आये । भगवान तो इतना भी नहीं करते !"

"करते कैसे नहीं ?"—तिलकधारी सज्जन ने बीच में ही टोंका, "शुभ कार्य की प्रेरणा भगवान ही तो करते हैं ।"

सहायकों के आजाने से दार्शनिक जोर से चहकने लगे—"शुभ कार्य की प्रेरणा भगवान करते हैं तो अशुभ कार्य की प्रेरणा कौन करता है महाराज ?"

निशंक भाव से महाराज ने उत्तर दिया—"वह भी भगवान की ही लीला से पैदा होती है। वे तो लीलामय हैं, लीला करते हैं। देखो, दुष्ट दुर्योधन और रावण के पाप का दण्ड देने के लिए भगवान ने उनकी बुद्धि पहले हर ली !"

"धन्य हो महाराज !"—हाथ जोड़ इतिहासज्ञ बोले, "पहले बुद्धि हर कर मनुष्य से पाप करवाना और फिर उसे पाप का दण्ड देना। यह तो दया नहीं घोर अन्याय है। और यदि भगवान अपनी लीला के लिए अन्याय करके ही दिल बहलावा करना चाहें तो भाई उनकी भक्ति किये से भी कुछ होने का नहीं।

इतिहासज्ञ के साथ आये कांग्रेसी महाशय ने हाथ उठाकर कहा—"भगवान किसी के मन में पाप पैदा नहीं करते ! यह तो पाप से घिरी मनुष्य की बुद्धि है, जो उसे पाप की ओर ले जाती है। भगवान की भक्ति से मनुष्य बल्कि पाप से बचा रहता है। भगवान की भक्ति का यही तो उद्देश्य है कि मनुष्य पाप से दूर रहे।"

इस उत्तर से इतिहासज्ञ का समाधान न हुआ। वे फिर पूछ बैठे—"पाप को भगवान पैदा नहीं करते तो करता कौन है ? आखिर सृष्टि के आरम्भ में जब किसी आदमी ने पहले पहल पाप किया होगा तो ऐसा करने की प्रेरणा उसे कहाँ से हुई ?"

इन्हें टोककर दार्शनिक ने प्रश्न किया—"देखिये, भगवान की इच्छा बिना तो कुछ हो नहीं सकता। मनुष्य का मन और आत्मा भी तो भगवान का ही बनाया हुआ है। इस मन में पाप की प्रेरणा उठती है तो इसका कारण है कि भगवान ने उसे बनाया ही ऐसा है। सब प्रेरणा भगवान की इच्छा से ही उठती है। सर्वशक्तिमान भगवान चाहते तो मनुष्य के लिये ऐसा मन और आत्मा गढ़ते जिसमें पाप घुस न सकता। भगवान दयामय हैं तो उन्हें मनुष्य का मन-आत्मा 'पाप प्रूफ' बनाना चाहिये थी। तब यह संसार इतना दुःख-क्लेश और हिंसा पूर्ण काहे को होता ?"

कांग्रेसी महाशय ने कहा—"देखिये बुद्धि भी तो मनुष्य को भगवान ने ही दी है कि भले-बुरे को समझ सके ! और मनुष्य को स्वतंत्र बनाया है कि अपना रास्ता चुन सके !"

दार्शनिक ने हाथ उठाकर कहा—"सुनिये, यदि मनुष्य की बुद्धि पाप स्वयम कर सकती है तो पुण्य भी स्वयम ही कर सकती है। यदि मनुष्य को सुख, दुख, सफलता अपने कर्मों के अनुसार होती है तो भगवान की भक्ति का कुछ फायदा नहीं रह जाता, उनकी दुहाई देने से मतलब……..?"

कामरेड अब तक बोलने का अवसर न पा कमर पर हाथ रखे चुप खड़े थे, सहसा बीच में बोल उठे—"अजी भगवान कोई हों भी ? यों ही खामुखाह ढकोसला बना है !"

इनकी बात से विस्मित होकर तिलकधारी सज्जन क्रोध मे बोले—"अरे मुंह में कीड़े पड़ जायेंगे !"

उनके साथी ने क्रोध की अपेक्षा दलील का सहारा लेते हुए कहा—"वाह साहब, भगवान नहीं हैं तो इस संसार को ; सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी को किसने बनाया ? तुम्हें किसने बनाया ?"

इस सीधी चोट से कामरेड कुछ भी भयभीत न हुए, सीना तानकर बोले—"और फिर भगवान को किसने बनाया ?"

"वाह, भगवान को भी कोई बनाता है ?"—इन महाशय ने प्रश्न द्वारा उत्तर दिया, "भगवान ही तो सबको बनाते हैं, उन्हें कौन बना सकता है ? भगवान स्वयम बने हैं, और सदा से हैं।"

"आपने कह दिया, भगवान ही सबको बनाते हैं; सदा से हैं।"—कामरेड ने स्वर ऊँचा कर उत्तर दिया, "हम कहते हैं यह दुनिया भी सदा से ही है और स्वयम बनी है और जो कुछ करता है, मनुष्य करता है। ईश्वर को भी मनुष्य ने ही बनाया है।"

कामरेड की इस बात पर विश्वास न कर आस-पास के सज्जनों ने अविश्वास से सिर हिला दिया। अवसर देख तिलकधारी सज्जन के सहायक बोले—"ईश्वर को मनुष्य क्या बनायेगा ? मनुष्य का बनाया यह सब खेल खोखला है। मनुष्य में हिम्मत हो तो एक तिनका तक तो बना दे !"

कामरेड इस सार्वजनिक अविश्वास और विरोध से भी दबे नहीं। उन्होंने हाथ का घूंसा ऊपर उठाकर कहा—"तिनका क्या बना दे ? यह

सब फसलें कौन बनाता है ? यह बड़ी-बड़ी मशीनें कौन बनाता है, यह हवाई जहाज, रेडियो कौन बनाता है ? अरे परमेश्वर तो बनाता है, एक घोड़े की ताकत का जानवर और मनुष्य बनाता है, लाख घोड़े की ताकत का इंजन............!"

प्रश्न करने वाले सज्जन ने हाथ की उंगलियों को चोंच बना अपनी बात की बारीकी की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"सुनिये-सुनिये, लाख घोड़े की ताकत की बात जाने दीजिये। मनुष्य को अपनी ताकत का इतना ही भरोसा है तो वह मामूली सी मक्खी या मच्छर तो पैदा करके दिखा दे...........?"

दोनों हाथ उठाकर इतिहासज्ञ बोले—"जी हां बस ठीक है। भगवान का काम है, मच्छर, मक्खी, खटमल बनाना और मनुष्य का काम है इन्हें मारना !"

तिलकधारी बोले—"भगवान की इच्छा बिना मनुष्य क्या कर सकता है ?"

"तो फिर क्या भगवान यों मुर्गे लड़ा-लड़ा कर तमाशा देखा करते हैं ?—इतिहासज्ञ ने ऊंगलियां चलाकर पूछा। तिलकधारी ने निस्संकोच उत्तर दिया, "यह भगवान की लीला है, इसे मनुष्य नहीं जान सकता।"

"आपका मतलब है"—दार्शनिक ने पूछा, "जो कुछ मनुष्य जान नहीं सकता, कर नहीं सकता, उसे करने वाला भगवान है। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य का असामर्थ्य और उसका अज्ञान ही भगवान है और उसका दिमाग भगवान है ?"

हाथ चलाकर कामरेड बोले—"अजी इसका मतलब तो यही हुआ कि भगवान कुछ नहीं है।"

"वाह भगवान है कैसे नहीं।"—तिलकधारी सज्जन ने एक बार फिर क्रोध के स्वर में असंतोष प्रकट किया, "भगवान हैं नहीं तो सृष्टि के प्रारम्भ से भगवान चले कैसे आते हैं ? सब दुनिया सदा भगवान को मानती चली आई और यह कहते हैं, भगवान है ही नहीं।"

उसी तरह दुबारा हाथ चलाकर कामरेड फिर बोले—"वाह, दुनिया के मानने से क्या होता है ? दुनिया तो भूत को भी मानती चली आई है…… दुनिया तो जाने कितने तरह के भगवानों को मानती आई है ?…… ऐसे मानने से क्या होता है ! ……आदमी की अक्ल भी तो कोई चीज है ?"

"कितने तरह के भगवानों से क्या मतलब ?"—मोहल्ले के एक दूसरे सज्जन ने कहा, "भगवान क्या कई तरह के होते हैं। भगवान तो एक हैं।"

"कैसे कह सकते हैं आप भगवान एक हैं ?"—दार्शनिक ने टोका, "हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों के भगवान में भेद है। अफ्रीका के जंगलियों और कोल-भीलों के भगवान कुछ और ही ढंग के हैं। दूर क्या; यहीं देखिए, कोई भगवान कहते हैं, भैंस या बकरे की बलि दो तो हम प्रसन्न होंगे। कोई भगवान कहते हैं, मच्छर, खटमल और पिस्सू मारोगे तो हम नाराज हो जायेंगे। कोई भगवान सातवें आकाश में दरबार लगाते हैं तो कोई घट-घट व्यापक रहते हैं। कोई भगवान अपने भक्तों को प्यार करते हैं और अपने सामने सिर न झुकाने वालों को दण्ड देते हैं। एक भगवान हैं जो मनुष्य की तरह नाक-कान रखते हैं, दूसरे अग्नि वायु की तरह हैं और एक बिलकुल निराकार हैं। कोई भगवान हैं जो बिलकुल न्यायप्रिय हैं, खुशामद और भक्ति की बिलकुल परवाह नहीं करते। सख्त और बेमुरव्वत हाकिम की तरह इनाम और सजा दिये जाते हैं। और इस ज़माने के एक नये भगवान भी हैं। पिछले जमाने में हिन्दुओं मुसलमानों का साझा नेता बन जाने के लिये दोनों को मिलाकर अकबर ने चलाया था दीनइलाही। इस जमाने में भी सब के धर्म विश्वास को अपने पीछे लगाने की कोशिश करने वाले इस देश में हैं। इन्होंने बनाया है, चर्खा मारका भगवान। यह कहते हैं कि वेद, बाइबिल, कुरान सबका उपदेश एक है। मानो अब तक किसी ने इन किताबों को समझा ही नहीं, समझने वाले यही एक पैदा हुए हैं।

"इस चर्खा मार्का भगवान की पहचान बताई जाती है कि भगवान सत्य है और सत्य भगवान है। भगवान प्रेम है और प्रेम भगवान है। सत्य क्या है, और प्रेम क्या है, सो सबका अपना-अपना गढ़ा हुआ अलग-अलग है वैसे ही अपनी-अपनी जरूरत के मुताबिक सब का भगवान भी अलग-अलग है।"

इतिहासज्ञ के साथ जो गांधीवादी सज्जन आये थे उनका प्रयोजन था,

आवारागर्द दार्शनिक को कांग्रेस के किसी काम में समेट कर ले चलने का इसलिये बहस में किसी ओर से बोलना उन्होंने उचित न समझा। परन्तु चर्खा मार्का भगवान का यह सीधा ताना सुनकर वे बोलने से रह न सके—"देखिए भगवान को इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता और न तर्क से पकड़ा जा सकता है। वह विश्वास और अनुभव का विषय ......"

दार्शनिक गंजी मुर्गी-की सी अपनी गर्दन उठा तत्परता से इनकी बात सुन रहे थे और बात हाथ में आते ही ऐसे झपटे जैसे मुर्गी किसी भी वस्तु पर झपट पड़ती है। बोले—"जी जनाब ! भगवान को इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता तो फिर उसका अनुभव आप किस राह करते हैं ? अनुभव कर सकने या जान सकने के लिए शरीर में पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं जिनसे हम लोग भगवान को जान नहीं सकते, अनुभव नहीं कर सकते। आपके पास या आध्यात्मवादियों के पास वह छटी इन्द्री कौन है, जिससे आप भगवान को अनुभव कर लेते हैं ?"

दृढ़ विश्वास से सीने पर हाथ रख गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"आत्मा"।

आत्मा के नाम से दार्शनिक ऐसे भड़कते हैं जैसे ताजी कुत्ता हिरन को देखकर। वे उछल पड़े—"आत्मा होता क्या है ?"

इतिहासज्ञ डरे कि अनाकार आत्मा का प्रश्न बहस में आने से बहस बिल्कुल असीम हो जायगी इसलिये टोककर बीच में बोले—"आत्मा से भी आप किसी चीज को अनुभव करते हैं, विचित्र बात है ?"

आपकी आत्मा आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ से जो कुछ ज्ञान पाती है, वही सब आपका ज्ञान है और इस ज्ञान के आधार पर ही आपका अनुभव, कल्पना और विश्वास चलता है। इसी के आधार पर आपके आत्मा की—हम उसे संस्कार या चेतना कह सकते हैं—दौड़ हो सकती है। इसी अनुभव, कल्पना और संस्कार के आधार पर भगवान की शक्ति और गुण निर्भर करते हैं ?"—दार्शनिक ने कहा।

एक दूसरे कांग्रेसी सज्जन जो इस बहस को अब तक सर्वथा निरर्थक समझ रहे थे, बोले—"इसका मतलब तो यह हुआ कि भगवान की शक्ति भी उनके उपासकों की कल्पना के अनुसार घटती-बढ़ती है ?"

"बिलकुल यही तो बात है"—इतिहासज्ञ ने अपने हाथ की हथेलियों को आगे बढ़ाकर कहा जैसे यह बात उनकी हथेली पर ही धरी हो—"आप भगवान का इतिहास पढ़ देखिये।"—और उन्होंने सुनाना शुरू किया, "पहले जब मनुष्य की जानकारी बहुत कम थी, अपने गिरोह का मुखिया ही उसके लिये सब कुछ था, तब वह उसी की पूजा करता था। उसके मर जाने पर सुरक्षित स्थान में उसे गाड़, उसके फिर से जाग उठने की आशा में उसका आदर और पूजा करता था। हर एक गिरोह का देवता या भगवान अलग होता था, उसकी पूजा में शत्रुओं का रक्त भेंट किया जाता था। और यह देवता शत्रु के रक्त से तृप्त होकर अपने कबीले, कुनबे या गाँव को आशीर्वाद देता था और कहता था—शत्रुओं के रक्त की नदी बहा दो! लोग अपने-अपने भगवान के लिए लड़ते थे। भगवान की रक्षा मनुष्य करता था, मनुष्य की रक्षा भगवान नहीं। यह भगवान बात-बात पर रिश्वत लेता था। फसल बोने से पहले उसकी पूजा होती थी, फसल काटने पर उसकी पूजा होती थी। किसी स्त्री को भोग के योग्य हो जाने पर पहले इस भगवान का भोग लगता। सब वस्तुओं में यह भगवान अपना भाग बंटा लेते थे। पूजा ठीक से न होने पर रूठ कर अपने उपासकों को दण्ड भी देते थे। आज दिन भी आपको इस प्रकार के भगवान और उसके उपासक मिल जायेंगे देखिये असभ्य लोगों में....।"

"कम समझ और असभ्य लोगों की बात लेकर भगवान का मजाक बनाने से क्या लाभ?"—कांग्रेसी महाशय ने गम्भीरता से कहा, "हम और आप तो कम समझ नहीं!"

"वाह साहब!"—ताव के स्वर में दार्शनिक ने कहा, "कम समझ या असभ्य किसी को आप कैसे कह सकते हैं? इसका मतलब यह हुआ कि उन गरीबों के भगवान भी कम समझ और असभ्य हुए!"

बीच-बचाव करते हुए गांधीवादी सज्जन ने कहा—"नहीं भाई, भगवान तो एक ही हैं परन्तु जैसा मनुष्य का मन और आत्मा होती है वैसी ही प्रेरणा वह पाता है इसीलिए त्याग और तप द्वारा मन को शुद्ध करना आवश्यक है। कहा तो है तुलसीदासजी ने—'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी!'

दार्शनिक इनके मुख की बात पकड़ने के लिए पहले से ही तैयार बैठे

थे। तुरन्त बोल उठे—"सत्य वचन आपका। मन और आत्मा जैसा होता है वैसी ही उसे भगवान की प्रेरणा होती है। भगवान का कोई शरीर तो है नहीं। वे बेचारे प्रेरणा ही प्रेरणा तो हैं। अपनी बुद्धि और आवश्यकता के अनुसार उनकी प्रेरणा हो जाती है। वास्तव में वे कोई वस्तु होते तो सब जगह प्रेरणा भी एक सी होती। यह प्रेरणा है केवल आप का विश्वास। यदि आपकी जानकारी बढ़ जाय और मन निस्वार्थ हो जाय तो भगवान के बन्धन से आप मुक्ति पा जांय! उसकी प्रेरणा की आपको आवश्यकता ही न रहे। यह भी क्या जादू है कि स्वयम् बन्धन बनाकर मनुष्य उससे डरता है, उस बन्धन का गुलाम हो जाता है?" अत्यन्त भावुकता से दोनों हाथ फैलाकर दार्शनिक ने विस्मय और दैन्य प्रकट करना चाहा परन्तु उनके इस भाव के प्रति किसी की सहानुभूति न हुई।

तिलकधारी सज्जन के साथी अंग्रेजी पढ़े-लिखों की बहस से सम्मिलित हो जाने के कारण चुप हो गये थे; परन्तु अब उन्हें चुप होते देख, उन्होंने उपेक्षा और निराशा से कहा—"धन्य है ऐसी बुद्धि! भगवान ने सारी सृष्टि को पैदा किया है और यहाँ कह रहे हैं कि मनुष्य ने भगवान को बनाया।"—क्रोध में पैर पटकते हुए वे बहस की महफिल छोड़ अपने मकान की ओर चले गये।

कांग्रेसी सज्जन ने कारोबारी ढंग से कहा—"यों दलीलबाजी के लिए आप चाहें बातें गढ़ डालिये परन्तु यह तो आपको भी मानना ही पड़ेगा कि ईश्वर का विश्वास मनुष्य को सदाचारी रखता है और समाज में इससे शांति और व्यवस्था क़ायम रहती है। यदि ईश्वर का भय न हो तो कितना अनर्थ मच जाय? मनुष्य को धर्म और न्याय पर क़ायम रखने वाली इस शक्ति से आप कैसे इनकार कर सकते हैं।"

परिस्थिति अनुकूल देख गांधीवादी सज्जन ने समर्थन किया—"बिलकुल ठीक कहा आपने!" इतिहासज्ञ और दार्शनिक की ओर देख वे बोले, "आप देखिए, मनुष्य की शक्ति ही कितनी है? वह कितना निर्बल है परन्तु संसार भर का संचालन करने वाली शक्ति का आसरा पाकर वह न्याय और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देता है। इस शक्ति से विश्वास करने पर मनुष्य को संसार की बड़ी शक्ति भी दबा नहीं सकती! ...

मार, अग्नि वर्षा और अंग-अंग काटे जाने की यातना को भी मनुष्य सहर्ष सह जाता है। सत्य और धर्म की रक्षा के लिये इससे बड़ी और कौन शक्ति हो सकती है ?" इनकी बात समाप्त होते-होते सब लोगों के सिर इनकी बात के अनुमोदन में हिलने लगे।

कामरेड बीच में बोल उठे—"अच्छा यह तो बताइये, कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन में गांधीजी ने सत्याग्रहियों के लिए ईश्वर में विश्वास करने की कैद क्यों लगा दी ?"

गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"इसीलिये कि ईश्वर-विश्वास के सहारे मनुष्य निशस्त्र होकर भी बड़ी-से-बड़ी कठिनाई का सामना कर सकता है।"

"नहीं साहब ! यह बात नहीं।"—दार्शनिक ने आपत्ति की, "बात यह है कि ईश्वर प्रेरणा में अंध-विश्वास रखने वाले महात्मा गांधी जी के कार्य-क्रम में कोई सन्देह नहीं कर सकते क्योंकि गांधी जी अपना कार्यक्रम ईश्वर की प्रेरणा से निश्चित करते हैं। अपनी समझ से काम लेने वाले इस कार्य-क्रम की सफलता के सम्बन्ध में तर्क करेंगे। यह गांधी जी की बुद्धिमत्ता है कि अपने काम में किसी को दखल नहीं देने देते।"—अपनी बात कह चुकने के बाद इन्होंने अनुभव किया कि इनकी बात किसी को पसन्द नहीं आई।

युक्ति के बजाय भावुकता को विजय पाते देख इतिहासज्ञ ने भावुकता के स्वर में कहा—"आश्चर्य यह है कि मनुष्य के मनुष्यत्व को कुचल देने के लिए कितना यत्न किया जाता है। मनुष्य अपनी बुद्धि से सदाचार और न्याय के नियम बनाता है। परन्तु उन्हें अपनी इच्छा और निर्णय समझ कर वह उन्हें न मानेगा ! मानेगा भगवान की इच्छा समझ कर, भय से ! आप ही बता-इये, मनुष्य यदि स्वतंत्र रूप से न्याय और धर्म को अपने लिये उपयोगी समझ कर उसका पालन करे तब वह अधिक बलवान होगा और अधिक उन्नति कर सकेगा; या जब वह किसी भय से मजबूर होकर पशु की तरह व्यवहार करेगा ? ईश्वर की जिस महान शक्ति का सहारा विश्वास द्वारा पाकर आप बलवान बनना चाहते हैं, वह शक्ति आती कहाँ से है ? पहले आप भगवान की शक्ति और इच्छा में विश्वास करते हैं, फिर आप यह विश्वास करते हैं कि जिसे आप न्याय और धर्म समझते हैं वह भगवान की इच्छा है, तब शक्ति पाते हैं। यों सिर के पीछे से बाँह घुमाकर नाक पकड़ने के बजाय आप सीधे

ही नाक पर हाथ क्यों न धरें ? क्यों न आप उस बात पर विश्वास करें, जिसे आपकी बुद्धि अनुभव, तर्क, और ईमानदारी से ठीक और उचित समझता है। व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़, अपने को मनुष्य-समाज का अंग समझकर सोचिये तो आपकी बुद्धि स्वयं न्याय का मार्ग आपको दिखा देगी !"

इतिहासज्ञ ने देखा उनकी तर्क पूर्ण बातों का प्रभाव जनता पर नहीं हुआ जितना की गांधीवादी सज्जन के भगवान की इच्छा और भगवान की दया की दुहाई देने का हुआ इसलिए उन्होंने कहना शुरु किया – "ईश्वर और विश्वास को बनाया था, मनुष्य ने भय से रक्षा और साहस पाने के लिये, अपने आपको एक निश्चित नियम पर चलाने के लिये। मनुष्य-समाज के विकास और इतिहास में इसका उपयोग भी हुआ और मनुष्य-समाज अपनी परिस्थितियों के अनुसार इस ईश्वर के रूप और उसकी आज्ञाओं को बदलता आया। यह विश्वास समाज में व्यवस्था कायम रखने का उपयोगी साधन बन गया परन्तु हुआ क्या ? जैसे समाज में बलवान श्रेणी ने जीवन निर्वाह के साधनों को अपने वश में कर लिया; उसी तरह समाज में व्यवस्था कायम रखने के लिए इस उपयोगी साधन को भी समाज की बलवान श्रेणी ने अपने स्वार्थ के लिए हथिया लिया। इस साधन से वे सदा ही अपने स्वार्थों और हितों की रक्षा करते रहे और आज भी कर रहे हैं। आज ईश्वर विश्वास का अर्थ है— अपने ही पापों के कारण दुख भोगने का विश्वास। आज इसका अर्थ है चली आती शोषण की व्यवस्था को पलट कर हिंसा की चेष्टा न करना ! इसका अर्थ है– अपने आपको भगवान के कारिन्दे समझने वालों के श्रेणी स्वार्थ की प्रेरणा के आगे सिर झुकाना !"

इतिहासज्ञ अभी और भी कहना चाहते थे परन्तु तिलकधारी सज्जन के साथी ने दोनों हाथ कान पर रखकर ऊंचे स्वर में कहा—"ऐसे नास्तिकों की तो बात सुनना भी पाप है।"—और चल दिए।

कांग्रेसी और गांधीवादी सज्जन इतिहासज्ञ को साथ ले दार्शनिक से मिलने में, दार्शनिक के प्रभाव और लिहाज से कुछ मेम्बर कांग्रेस के बनाने आये थे, ऐसी परिस्थिति में उनका आना बेकार हुआ। विचारों के भेद की परवाह न कर वे मुस्कराहट से वन्देमातरम कह कर लौट गये।



रामराज्य की पुड़िया

उस दिन 'अमीनुद्दौला-पार्क' में कोइ एक बड़ा लेक्चर था। जमघट से लाभ उठाने का ध्यान एक मजमा लगाने वाले भलेमानस को आ गया। भीड़ से कुछ एक क़दम परे हट उन्होंने बाँसों की एक तिकोन खड़ी करदी। तिकोन के बीचों-बीच, एक नरकंकाल, जो कि स्कूल में या डाक्टरी पढ़ाने के कालिज में विद्यार्थियों को दिखाया जाता है कड़ी से लटका दिया। सामने ज़मीन पर तीन-चार हरी-नीली प्यालियों में कुछ जल छोड़, स्पिरिट लैम्प जला, स्वयम् एक काला चोगा पहन, वे भाव-पूर्ण मुद्रा में खड़े हो गये। विचित्र वस्तुओं के इस संयोग को देख चारों ओर कुछ तामाशवीन आ जुटे। इन महाशय ने व्याख्यान देना शुरु किया—

"हाज़रीन! आप क्या देख रहे हैं?"—हड्डी से ढांचे की ओर संकेत कर उन्होंने कहा, "यह कोई ताज्जुब की चीज़ नहीं। हम सब की हक़ीकत यही है। यह जहान फानी है। एक दिन हम सबका यही हाल होगा।"—हाथ की तर्जनी उंगली उठा धमकाने के से ढंग से बोले, "खूब देख लीजिये, यही हाल होगा!" सुनने वालों के रोंगटे खड़े होने लगे। उनका स्वर गम्भीर हो गया, "यह चार दिन की चांदनी है और फिर वही अन्धेरी रात! परमेश्वर ने, परवरदिगार ने हमें दुनियां में भेजा है कि कुछ कारे-सवाब करें और जन्नत नसीब हो लेकिन हम गफलत में फंसकर हमेशा गुनाह किया करते हैं और दोजख में जायगे।"

कुछ देर तक जन्नत और स्वर्ग के मजों और दोजख की तक़लीफों की

तस्वीर खींच उन्होंने समझाया—"सवाब और गुनाह, यानी पुण्य और पाप इन्सान सब इस देह से ही करता है। इस देह का तन्दुरुस्त होना जरूरी है लेकिन आपका जिस्म क्या है ? आपके दिल में धड़कन होती है, जरा दिल पर हाथ रखकर देखिये ! आप उठकर खड़े होते हैं तो सिर में चक्कर आ जाता है। आँखों के आगे लाल, पीले, नीले, हरे तारे दिखाई देने लगते हैं। बीवी के सामने से आपको आँखें नीची करके हटना पड़ता है ! गैरत है ऐसी जिन्दगी पर ! चश्मे के बिना आप रात में देख नहीं सकते ! क्यों ?............" स्वर को खूब ऊँचा कर उन्होंने ललकारा, "क्योंकि आपका हाज़मा दुरुस्त नहीं, आपका जिगर ठीक हरकत नहीं करता, आपकी रगों में जुम्बिश नहीं ! और हमारे बुजुर्ग सौ बरस की उम्र तक औलाद पैदा करते थे और एक सौ पन्द्रह बरस की उम्र तक रात के वक्त बिना चिराग़ के पढ़ सकते थे !........... क्या वजह ?"—पंजों के बल उचक, दोनों बाहें फैला उन्होंने जनता से पूछा और फिर स्वयम ही उत्तर दिया, "क्योंकि वे नापाक नहीं होते थे !"

अनेक हाव-भाव से व्याख्यान दे उन्होंने बताया—"खुद उनकी हालत एक मुर्दे से बदतर हो गई थी। अपनी शर्मनाक जिन्दगी से तंग आकर एक दिन वह आत्म-हत्या करने हिमालय पहाड़ की बहुत ऊँची चोटी पर जा चढ़े। बस कूदा ही चाहते थे कि अपनी शर्मनाक जिन्दगी को खत्म कर दें, किसी ने उनकी कलाई को लोहे के शिकंजे में जकड़ लिया। घूमकर देखते हैं तो क्या।....... बरफ़ की तरह सफ़ेद लम्बी जटा और दाढ़ी-मूंछ बढ़ाए एक शख्स खड़ा है जिसकी उम्र थी चार सौ-बीस बरस की लेकिन चेहरे पर सूरज का नूर ! देखकर वह हक्के-बक्के रह गये। जब होश आया तो बोले, "ऐ महात्मा, मुझे मरने दे ! मैं जिल्लत की जिन्दगी से तंग आ गया हूँ। उन महात्मा ने कहा—'ऐ शख्स, खुदकशी करना गुनाह है। तेरी जिन्दगी बन सकती है अगर तू कौल करे कि बाकी तमाम जिन्दगी पाकीजगी से रहेगा और खुदा की राह में ग़रीबों की खिदमत में गुज़ारेगा।"

व्याख्यान देने वाले साहब ने कौल किया कि वह महात्मा का हुक्म मानेंगे। महात्मा उन्हें अपने साथ अपनी कुटिया में ले गये। महात्मा ने एक बड़ी भारी चट्टान के नीचे से एक बूटी निकालकर तीन दिन तक उन्हें खिलाई।

एक खूराक खाते ही उनकी नसों में विजली दौड़ गई और तवीयत में आया कि सौ मन का पत्थर उठा लें और वरगद के पेड़ को पकड़ कर चीर डालें। तीन दिन के वाद जव वे विलकुल चंगे हो गये, महात्मा ने उन्हें हुक्म दिया कि जाओ अपने जैसे दूसरे वदकिस्मतों की जिन्दगी वचाओ।

उनका स्वर करुणापूर्ण हो गया—"अपनी मेहनत से कमाई दौलत को पैसा ऐंठने वाले डाक्टरों, वैद्यों और इश्तहारवाजों से वचाना चाहते हैं तो आइये ……!"

आखिर उस वेशकीमत वूटी को लेकर वे दुनियाँ का भला करने आये हैं और वही वूटी कुल कीमत चार आना में !—सिर्फ़ लोगों की भलाई के लिये, देने के लिये उन्होंने कुछ पुड़ियाँ निकालीं। इस पुड़िया से दिमाग की कमज़ोरी, नसों में पानी पड़ जाना, जिस्म की नाताक़ती, दिल की धड़कन, गुर्दे का दर्द, नजर की खरावी, वदहज़मी, ज़ुकाम, जिल्द की खरावी सव आनन-फ़ानन दूर हो जाता है……कीमत सिर्फ़ चार आना फी पुड़िया। खाने वाला परहेज से रहें। सुवह के वक्त मुंह जूठा करने से पहले ताजे पानी से खा लें।

लोगों को जेव से पैसे निकालने में हिचकते देख उँगली उठा उन्होंने जनता को होशियार किया—"याद रखिये, जिसे पुड़िया लेनी हो अभी ले ले ! वर्ना, एक दफे पुड़िया वेग में वन्द कर दी जाने पर फिर चार सौ रुपये हाजिर करने पर भी नहीं दी जायगी !"

इस भीड़ में कांग्रेस का व्याख्यान सुनने आये अनेक गांधी टोपीधारी सज्जनों के साथ ही भाग्य से चक्कर क्लव के इतिहासज्ञ, दार्शनिक और कामरेड भी खड़े थे। कामरेड को पुकार सव को सुनाने के लिए इतिहासज्ञ ने कहा,—"यार कामरेड, ले लो न यह रामराज्य की पुड़िया !"

"रामराज्य की कैसी पुड़िया ?"—कामरेड ने विस्मय प्रकट किया।

"अरे, रामराज्य भी नहीं जानते ? जैसे इन हकीम साहव की तिलस्मी पुड़िया में सव जिस्मानी वीमारियों की दवा है, उसी तरह रामराज्य में सव कौमी वीमारियों का इलाज है। देखो, रामराज्य की पुड़िया ऐसी है कि सव मर्जों पर चलती है। विदेशी गुलामी इससे दूर हो जायगी। पंजीपतियों और जमीन्दारों के अधिकारों पर आने वाली आँच इससे दूर हो जायगी। मजदूरों

और किसानों का शोषण इससे दूर हो जायगा। जनता की भूख और कंगाली इससे मिट जायगी। लोग सदाचारी बलवान और निर्भय हो जायेंगे। देश से हिंसा मिट जायगी। सब परस्पर-विरोधी सम्प्रदाय ज्यों के त्यों बने रहेंगे और उनमें कलह न होगा। स्त्रियों की पराधीनता दूर हो जायगी और वे पतियों की आज्ञाकारी सेवक बनी रहेंगी। मशीनरी से फैलने वाला अनाचार और व्यभिचार दूर हो जायगा और बेरोजगारी और बेकारी के कारण होने वाली देश की कंगाली भी दूर हो जायेगी।""""प्रजातन्त्र और समाज वाद के निरर्थक झगड़ों में पड़कर देश को व्यर्थ में श्रेणी संघर्ष के झगड़े में फँसाने से क्या फायदा ? यह स्वदेशी बूटी घोल-घोल पियो ! हिन्दुस्तानियों को किसी से कुछ सीखने की जरूरत नहीं। हकीम साहब की बूटी तो हिमालय पहाड़ के चार सौ-बीस बरस बूढ़े महात्मा की दी हुई है, यह रामराज्य की बूटी स्वयम भगवान की प्रेरणा है। जैसे महात्मा की बूटी के नुसख़े के बारे में किसी डाक्टरी या वैद्यक की पुस्तक के विचार से बहस नहीं हो सकती, उस पर जिरह वह करे जो चार सौ-बीस बरस की आयु का हो ! उसी प्रकार ईश्वर की प्रेरणा के विषय में सन्देह वही कर सकता है, जिसे ख़ुदा से मुलाकात का दावा हो ! कहो दोस्त, क्या बढ़िया नुसखा है ? तुम्हें और क्या लेना है पट्ठे ! अब चर्खा घुमाओ और नीरा पियो !"

एक गांधी टोपीधारी सज्जन इतिहासज्ञ के इस बकवास को सुन, अहिंसात्मक रूप से उत्तेजित हो रहे थे, आखिर बोले—"जुबान तो तुम लोगों की बहुत चलती है, करेंगे कुछ नहीं ; सिवा इसके कि जिस पत्तल में खायें उसी में छेद करें !"

कामरेड साहब को शायद पेट की ज्वाला बहुत व्याकुल कर रही थी, बोल उठे—"कहां है पत्तल, कैसी पत्तल ?" गांधी टोपीधारी सज्जन ने उत्तर दिया, "यह पत्तल नहीं तो क्या ? कांग्रेस की बदौलत तुम लोगों को शक्ति मिली, देश में राजनैतिक जागृति फैली और अब आप उसी को कोस रहे हैं। तुम लोगों में हिम्मत हो तो देश के सामने अपना प्रोग्राम रक्खो। देश की जनता क्या तुम्हारी धोखाबाजी समझती नहीं। तुम लोग देश में असंतोष और श्रेणी-द्रोह की आग फैलाकर हिंसा का प्रचार करना चाहते हो !"

अब कामरेड समझे कि असली पत्तल का कोई जिक्र नहीं। बहस के

पैंतरे से सम्भल कर उन्होंने उत्तर दिया—"हम हिंसा फैला रहे हैं कि देश में फैली हुई हिंसा को दूर करना चाहते हैं। करोड़ों किसान और मजदूर एड़ी से चोटी तक पसीना बहाकर परिश्रम करते हैं या नहीं ? फिर भी उन्हें और उनके बच्चों को भर पेट भोजन नहीं मिलता, वे नंगे रहते हैं ; यह हिंसा है या नहीं ? लाखों आदमी बेरोजगार रह कर पेट पर पत्थर रखे मौत की घड़ियाँ गिनते हैं, यह हिंसा है या नहीं ? और यह सफेदपोशी पर जान देने वाले मध्यम श्रेणी के लोग, अपने बच्चों की सेहत और शिक्षा के लिए बात-बात पर दिल मसोस कर रह जाते हैं, यह हिंसा है कि नहीं ? जनता के फी हजार में नौ सौ-निन्यानवे का दुख संकट और गरीबी में रहना हिंसा है या नहीं ! इसी हिंसा को हम समाजवाद के द्वारा दूर करना चाहते हैं।"

"तुम्हारा समाजवाद तो निरी हिंसा है ?"—गांधी टोपीधारी सज्जन ने जवाब दिया, "लोगों की धन सम्पत्ति छीन कर तुम आपस में बांट लेना चाहते हो, यह हिंसा नहीं तो और है क्या ?"

दार्शनिक के हाथ में एक सिगरेट था। बहस में पड़ सिगरेट को वे व्यर्थ जलने नहीं देना चाहते थे। सिगरेट जब इतिहासज्ञ ने उनके हाथ से ले लिया तो गांधी टोपीधारी सज्जन को सम्बोधन कर वे बोले—"छीन लेने का तो कोई मौका समाजवाद में रह ही नहीं जाता। समाजवाद में कोई किसी से छीनेगा कैसे, किसी का शोषण करेगा कैसे ? देखिये शोषण तो वे ही लोग करते हैं जो स्वयम मेहनत से पैदा नहीं करते। समाज़वाद का तो अर्थ है, सम्पूर्ण समाज समान रूप से मेहनत कर सके। जब सभी लोग मालिक होंगे तो कोई छीनेगा किससे ?

गाँधी-टोपीधारी एक दूसरे सज्जन, जो ऐनक लगाये थे और गम्भीर जान पड़ते थे, टोककर बोले—"यह सब तो कहने की बात है। समाजवाद में आप लोग मजदूरों का राज बल्कि कहिये मजदूरों की तानाशाही कायम करना चाहते हैं फिर उसमें सबका समान अधिकार कैसे हो सकता है ? यह तो हिंसा की भावना है। रामराज्य में सभी के लिये, चाहे मालिक हों या मजदूर, समान अधिकार होगा, असली समता होगी।

"हां हम चाहते हैं !"—कामरेड बौस के स्वर में बोले। चुप कराने के

लिये उनका हाथ थामते हुए दार्शनिक ने कहा, "श्रीमानजी, मजदूरों की तानाशाही आपने कह तो दिया परन्तु इसका मतलब क्या समझें ?"

"मतलब ?"....गांधीवादी सज्जन ने हाथ उठाकर कहा, "मतलब क्या तानाशाही किसी की भी हो, अन्याय और अत्याचार है। हम मानते हैं कि मजदूरों का शोषण अन्याय है परन्तु मजदूर दूसरे पर अत्याचार करें यह भी तो न्याय नहीं ? आप ही बताइये क्या यह न्याय है ! और फिर उसमें साम्यवाद क्या हुआ ? यह तो मजदूरों की शक्ति के बल पर हिंसा हुई। इनका मतलब है कि जब शक्ति दूसरे के हाथ में जायगी, उसे भी हिंसा करने का अधिकार होगा ! न्याय, साम्यवाद और अहिंसा हृदय परिवर्तन हुए बिना कायम नहीं हो सकती ! न्याय और समता हो सकती है केवल अहिंसा और सेवाभाव से ! जब शासन केवल सेवाभाव से किया जाय ?"

सिगरेट का कश आधे में छोड़ इतिहासज्ञ खांस उठे—"इनका मतलब है, चोरी यदि प्रेम भाव से की जाय तो चोरी नहीं और शासन सेवाभाव से किया जाय तो हिंसा नहीं।"

"शासन सेवाभाव से कभी किया ही नहीं जा सकता"—दोनों हाथ अपनी पतली कमर पर रख वे जोश में एक कदम आगे बढ़ गये, "और न कभी किया गया है।"

"वाह साहब !"—गांधीवादी सज्जन बोले, "ऐसे-ऐसे राजा भारत में हुए हैं, जिन्होंने प्रजा की सेवा ही अपने जीवन का उद्देश्य समझा। पांचों उँगली एक-सी थोड़े हो सकती हैं ?"

"अजी साहब सुनिये तो"—कमर से एक हाथ उठा सुनने का संकेत करते हुए दार्शनिक बोले, "कोई राजा कैसा भी हो, काम तो उसका शासन करना ही है ! और शासन किया किस लिए जाता है ?"

"शासन कायम किया जाता है समाज में शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए ! इसलिए कि कोई किसी पर अत्याचार न करे ! सब लोगों को आराम से जीवन गुजारने का बराबर अधिकार हो ! रामराज्य में शासन का उद्देश्य इसी प्रकार की अहिंसा है।"—गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया।

दार्शनिक अपनी बात जल्दी कह पाने की बेसबरी में एक कदम और आगे बढ़ गये "अरे भाई आपके राम अयोध्या में हो गए परन्तु शासन तो समाज के आरम्भ से दुनिया भर में कायम किया जाता रहा है ? शासन राम से पहले भी था और बाद में भी रहा। किसी के राम या रावण बन जाने से शासन के उद्देश्य में अन्तर नहीं आ जाता। बहुत हुआ कुछ समय के लिए शासन के व्यवहार में अन्तर आजायगा ...... ठीक कहा हमने...?"— इतिहासज्ञ कुछ और कहना चाहते थे परन्तु गांधीवादी सज्जन बोल उठे, "दुष्ट और स्वार्थी शासकों की बात जाने दीजिए। शासन और व्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिए न्याय, धर्म और अहिंसा !"

"बहुत ठीक"— हाथ जोड़ इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया, "न्याय, धर्म और अहिंसा की स्थापना अवश्य होनी चाहिए। यह हम मानते हैं परन्तु न्याय धर्म और अहिंसा के क़ायम रहने में कोई खतरा होगा तभी तो आप उसका प्रबन्ध करने के लिए व्यवस्था करेंगे या ऐसे ही !"

"हां और क्या?"—कामरेड ने अपने साथी को बात जारी रखने का अवसर देने के लिए हामी भरी। दार्शनिक ने अपनी बात आरम्भ की, "तो फिर समाज में शासन या प्रबन्ध क़ायम कौन कर सकता है ? जो लोग निर्बल, कमजोर और साधनहीन हैं या वे लोग जो बलवान और साधन-सम्पन्न हैं ? आप कहते हैं शासन और व्यवस्था इसलिए क़ायम होनी चाहिए कि अन्याय और हिंसा न हो। हम पूछते हैं जो कमजोर हैं, साधनहीन हैं, वह कमबख्त हिंसा और अन्याय करेगा किस बूते पर ? अन्याय और हिंसा वही कर सकता है जो बलवान और साधन-सम्पन्न होगा। मुआफ कीजिए गुस्ताखी, समाज में शासन उसी का होगा जो सबल और साधन-सम्पन्न है —मानते हैं या नहीं आप ?"

गांधीवादी सज्जन को बोलने के लिए मुख खोलते देख, दोनों हाथ उठा इतिहासज्ञ बोल उठे—"इसका मतलब हुआ कि शासन सदा हिंसा और अन्याय कायम रखने के लिये होता है। न्याय और अहिंसा कायम हो सकती है केवल शासन का अन्त कर देने से ......मानते हैं कि नही आप ?"

"बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक !"—कहकर कामरेड ने जोरों से समर्थन किया। परन्तु इस समर्थन से गांधीवादी दबे नहीं। वे बोले—"यह भी कोई

दलील है ? सीधी बात तो यह है कि शासन और व्यवस्था कायम की जाती है कि कोई किसी का हक़ न छीने, किसी पर अनुचित दबाव न डाले, किसी की हिंसा न करे ! शासन होता है धर्म की रक्षा के लिये।"

दार्शनिक से पहले ही बोल उठे इतिहासज्ञ—"यह तो ठीक है कि शासन धर्म, न्याय और अहिंसा की रक्षा के लिए होता है परन्तु धर्म न्याय और अहिंसा क्या है, इस बात का निश्चय भी तो बलवान, साधन-सम्पन्न और मालिक ही कर सकते हैं। ऐसे लोगों को भय रहता है, इनके धन दौलत पर लोग हाथ चलायेंगे इसलिए वे नियम बनाते हैं कि किसी का धन कोई भी न ले ! परन्तु सेवक या प्रजा से परिश्रम करा, उन्हें पेट भर रोटी दे शेष धन अपने पास रख लेना कभी हिंसा या पाप नहीं समझा गया। मालिक की स्थिति और अधिकार जिस तरह से कायम रह सके वही सब न्याय और अहिंसा है ! प्रजा में द्रोह की भावना जोर न पकड़े, इसलिए ऐसे नियम सब पर समान रूप से लागू किये जाते हैं। परन्तु सम्पूर्ण व्यवस्था का प्रयोजन होता है मालिकों के अधिकार और हित की रक्षा ! धर्म और व्यवस्था की रक्षा का अधिकार सदा रहा है मालिकों और ठाकुरों के हाथ, कभी गुलामों ने या सेवकों ने यह काम नही किया। रामराज्य में न्याय और अहिंसा क़ायम रखने के लिये तपस्या कर ऋषियों की बराबरी करने वाले शूद्रक का सिर काटना ही पड़ा। इसके लिये राम को क्या दोष दिया जाय ?"

"इस एक घटना को लेकर आप इतना रंग बांधते हैं"—गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया, "परन्तु यह आप नहीं देखते कि वह राज्य, प्रजा का शोषण करने के लिये नहीं बल्कि प्रजा की सुख शान्ति के लिए प्रजा की सम्मति से होता था ! देखिये, एक धोबी के कहने से राम ने सीता को बनवास दे दिया ! भारत में शक्ति और धन का राज्य कभी नहीं हुआ ! यहां शस्त्र-धारी क्षत्रियों और राजाओं से अधिक सम्मान और शक्ति थी, सर्वस्व त्यागी ब्राह्मणों और ऋषियों की, जो वल्कल-वस्त्र पहन और कन्द-मूल खाकर निर्वाह करते थे ! उनके पैर के अँगूठे से राजाओं का राजतिलक होता था !"

"यदि राम ने यह सोचा कि प्रजा में धोबी जैसे तुच्छ मनुष्य भी मुझे स्त्री का दास समझ जाते हैं तो प्रजा में मेरा क्या सम्मान रहेगा और प्रजा पर अपना प्रभाव रखने के लिए उन्होंने अपनी स्त्री को घर से निकाल दिया

तो इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि राम के राज्य में शक्ति के बल पर प्रजा को वश में रखने की व्यवस्था नहीं थी।"—इतिहासज्ञ बोले, "कन्द-मूल खा कर और पेड़ों की छाल ओढ़ कर राज्य की व्यवस्था के नियम बनाने वाले ऋषि लोग आख़िर थे कौन? वे शासक श्रेणी के नेता थे और शासक श्रेणी के हित के लिये ही व्यवस्था कायम रखते थे। दूसरी जातियों को राक्षस बता, अपनी जाति और श्रेणी के योद्धाओं को उपदेश देते थे कि उनका नाश करें और दूसरी श्रेणियों को तुच्छ बता उच्च जाति और वर्ण की सेवा के लिए उन्हें वश और व्यवस्था में रखें। उनका त्याग, एक विशेष विचारधारा के कारण, व्यक्तिगत जीवन का शौक और ढंग था। ऐसे त्याग से समाज में शोषण और दमन समाप्त नहीं हो सकता। यूनान के महर्षि सुक़रात बड़े भारी त्यागी थे परन्तु तो भी उपदेश दे गये कि सभ्यता के विकास के लिए गुलामी की प्रथा आवश्यक है, न्याय है और धर्मानुकूल है। यही बात भारत में थी! राज्य ब्राह्मणों का था, क्षत्री उनके कारिन्दे थे। वे कहलाते थे राजा परन्तु राज्य करते थे ब्राह्मणों के आशीर्वाद और अनुमति से और इसके फल-स्वरूप ब्राह्मणों की सब आवश्यकतायें पूरी करते थे। उस व्यवस्था में खेती और व्यापार करने वाले वैश्यों को तथा बिना साधन के शारीरिक परिश्रम करने वाले शूद्र सेवकों का शोषण होता था। वर्ण-व्यवस्था की शासन पद्धति का उद्देश्य यही था। परिस्थितियाँ बदलने के कारण शासन व्यवस्था में ब्राह्मणों का वह अधिकार नहीं रहा। जीवन-निर्वाह के साधनों पर अधिकार होने से वैश्य का काम करने वालों का शासन समाज की आर्थिक व्यवस्था पर हो गया और वे ही लोग इस समय संसार भर में शासक श्रेणी हैं। आज रामराज्य की व्यवस्था में सुख-शान्ति, सेवा और अहिंसा का राग अलापने का मतलब मालिक और सेवक की व्यवस्था बनाये रखना है। मालिकों के हाथ से अधिकार न छीनने के लिए परिश्रम करने वाले शूद्रों को अहिंसा का उपदेश दिया जाता है और मालिकों को उपदेश दिया जाता है त्याग और सेवाभाव का, ताकि परिश्रम करने वाले शूद्र व्यवस्था को पलट डालने के लिये विवश ही न हो जांय! मतलब यह है कि शोषण की असह्य व्यवस्था को सह्य बनाकर कायम रखा जाय और उसे नाम दिया जाय रामराज्य की पुड़िया का जिसे खोल कर कोई देख नहीं सकता क्योंकि वह अदृश्य भगवान की प्रेरणा है। यह धोखा नहीं तो क्या है?"

जोर से और बोलने के कारण इतिहासज्ञ का चेहरा लाल हो गया और मुख सूखने लगा। यह देख दार्शनिक ने कहना शुरू किया—"जब एक श्रेणी साधनों की मालिक और बलवान होगी दूसरी साधनहीन और निर्बल तो बलवान श्रेणी का शासन होगा ही। उसे नाम आप चाहे जो कुछ दे दीजिये। चाहे प्रजातंत्र कहिये या रामराज्य कहिए या मेहनत करने वाले साधनहीनों के जागृत हो जाने पर उन्हें बलपूर्वक वश में रख फैसिज्म या नाजिज्म कहिये यह सब है एक ही ?"

कामरेड अपने साथियों की इतनी लम्बी वक्तृता से जोश में आ गये। और किसी को बोलने का अवसर न दे, दोनों बाहें ऊंची उठा, ऊंचे स्वर से उन्होंने कहा - "मजदूरों का एक छत्र राज !" स्वयम् ही अपनी विजय समझ कर उन्होंने नारा भी लगा दिया - "पूंजीवाद का नाश हो ! इन्क़लाब जिन्दाबाद !"

कामरेड के यह सब जोश और उत्साह दिखा देने के बाद गांधीवादी सज्जन ने मुस्कराकर कहा—"बहुत खूब !" दूसरी श्रेणियों की तानाशाही की निन्दा और नाश का नारा लगा देने के बाद आप मजदूरों की तानाशाही को जिन्दाबाद कर रहे हैं। आप दमन और हिंसा के पुजारी हैं। चाहते हैं केवल यह कि हिंसा का अधिकार पूंजीपतियों और जमीन्दारों के हाथ से निकलकर मजदूरों के हाथ में आजाय !"

दार्शनिक साहब बौखला गये बोले—"यानी आपने कसम खाली है कि समझेंगे ही नहीं। श्रीमानजी मजदूरी या मेहनतकश कहते उसे हैं, जिसके पास शोषण हिंसा या दमन के साधन ही न हों ! मेहनतकश का गला घोंट कर आप उसके प्राण लेना चाहें ऐसी हालत में वह छटपटाने लगे और उसके पैर या हाथ आप की नाक पर जा लगें तो इसे हिंसा नहीं कहा जायगा ? समझते हैं आप ? आपके नीति शास्त्र के ही अनुसार हिंसा का अर्थ है बलपूर्वक दूसरे को हानि पहुंचाना। साधनहीन आदमी या श्रेणी ऐसा करेगी किस तरह ? और फिर मजदूर राज का यह अर्थ तो नहीं कि मजदूर पूंजी के मालिक बन जायं और जो लोग आज पूंजीपति या जमींदार हैं उन्हें साधनहीन बना दें। साधनों के उपयोग का अवसर मजदूर राज में सब को एक ही समान

होगा ? उस अवस्था में सबके हित भी एक ही नीति से पूरे होंगे फिर दमन या शासन किस का किया जायगा ?

टोक कर गांधी टोपीधारी सज्जन ने प्रश्न किया—"तो फिर जनता के सेवकों का राज क्यों न हो ? मजदूरों का राज क्यों हो ?"

"शासन का काम अपने सेवकों से न करा जनता स्वयम् ही क्यों न करे ? हमें अपनी सेवा कराना मंजूर नहीं। जब समाज में सभी लोग मेहनत करने वाले हैं, उस समय यदि सब काम मेहनत करने वालों के हित से उनकी राय से किया जाता है तो इसका मतलब सम्पूर्ण जनता की इच्छा का पूर्ण राज। इसे आप तानाशाही या हिंसा किस तरह कह सकते हैं ? अर्थ का अनर्थ आप करना चाहें तो दूसरी बात है ? मजदूरों की तानाशाही का अर्थ यदि यह है कि मेहनत करने वाली जनता की इच्छा और निर्णय के पूरा होने में कोई रुकावट न होगी तो इसे आप हिंसा कहेंगे या अहिंसा ? ऐसी अवस्था में भी यदि कोई आदमी मेहनत करने वाली सम्पूर्ण जनता की राय और इच्छा के विरुद्ध अपनी ही हांकना चाहता है तो हिंसा का अपराधी वही है और सम्पूर्ण जनता को हिंसा से बचाने के लिये उस हिंसा को रोकना जरूरी होगा या नहीं ? इसे आप जतना की तानाशाही कहेंगे या जनता का आत्म-निर्णय कहेंगे ? इसे आप जनता के कल्याण के लिये व्यक्तिगत तानाशाही को रोकना कहेंगे या व्यक्ति पर अत्याचार कहेंगे ?"

दार्शनिक इतने उत्साह और आवेश से बोल रहे थे कि कई बेर थुथला गये परन्तु गांधीवादी सज्जन ने अविचल भाव से उत्तर दिया—"देखिये, यह क्या विचारों का दमन नहीं ? यदि आप बहुमत के बल से अल्पमत को अपने विचार तक प्रकट न करने दें तो इसे विचार स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकता और विचारों का दमन सब से बड़ा अत्याचार है। आपके रूस में यही तो हो रहा है। यह मनुष्य को पशु बना देता है।"

इतिहासज्ञ सिगरेट समाप्त हो जाने पर कामरेड की जेब से एक बीड़ी निकाल उसे सुलगाते हुए बोले—"विचारों की स्वतंत्रता का आपको बहुत ख्याल है ? परन्तु विचार तो मनुष्य कर सकता है तब, जब उसे जीवित रहने का अवसर हो ! भली प्रकार जीवित रहने के लिये ही मनुष्य विचार भी करता है। जब मनुष्य के पास जीवित रहने के ही साधन नहीं, जीवित रह सकने

के लिये उसे पराधीन रहना पड़ता है तो विचारों की स्वतंत्रता आयेगी कहां से ? पहले उसे स्वतंत्रता पूर्वक विचार करने का अवसर तो दीजिये फिर उसके विचारों की स्वतंत्रता की वात सोची जायगी । मेहनत करने वाली जनता को पहले जीवित रहने का अवसर दीजिये तव देखिये वह क्या विचार करती है। जिन लोगों को दूसरों की दया पर जीवित रहना पड़ता है, उनके विचारों को स्वतंत्रता कैसी ?"

दार्शनिक वोले—"अल्पमत के विचारों का आपको वहुत दर्द है परन्तु यह तो सोचिये कि हजार में से नौ-सौ निन्यानवे आदमियों के विचारों के विरुद्ध यदि आप अपने विचारों को अमल में लाने की स्वतंत्रता चाहें तो यह नौ-सौ निन्यानवे के विचारों का दमन होगा या नहीं ? और फिर यदि कोई एक आदमी वहुमत के हित की वात कहता है तो आप शेप सव लोगों को इतना मूर्ख और दुराग्रही क्यों समझ लें कि वे उसकी वात नहीं मानेंगे ? भगवान यदि संसार का कल्याण चाहते हैं तो वे केवल एक आदमी के हृदय में सत्य प्रेरणा करके शेप सवको घपले में रखेंगे, यह विश्वास करने को हमारा तो जी नहीं चाहता !"

वहस में अकसर वही जीतता है जो ऊँचा वोल पाता है। इतिहासज्ञ के तो मानो गले में ही लाउड स्पीकर लगा हो ! दार्शनिक की रामराज्य की पुड़िया की तारीफ के आगे दवाई वेचने वाले मजमावाज के कदम पहिले ही उखड़ चुके थे। दवाई वेचने वाले तो इतिहासज्ञ और दार्शनिक से हार मान चले गये क्योंकि उन्हें समय का सदुपयोग करना जरूरी था परन्तु गांधीवादी सज्जन को ऐसी कोई मजवूरी शायद न थी इसलिये वे वहस के मैदान में डटे रहे। उन्होंने विल्कुल 'धोवीघाट' के से ढंग का दांव कर दार्शनिक से पूछा—"आप जो फर्माते थे कि शासन सदा ही सवल श्रेणी निर्वल श्रेणी को वश में रखने के लिए स्थापित करती है, उसमें सदा ही हिंसा रहती है, तो मजदूर-राज मजदूर-शासन भी मजदूरों के वल पर कायम होगा और शासन-शक्ति हाथ में रखने वाले लोग उन लोगों का दमन करेंगे, जिनके हाथ शक्ति नहीं होगी ?"

इन्हें उत्तर मिला—"राज और शासन शब्द से आपको इतना मोह है कि आप उसके लिये कोई न कोई शिकार ढूंड़ ही लेना चाहते हैं, चाहे वह

निरा ख्याल ही क्यों न हो ? आप ही बताइये, जब जीवन-निर्वाह के साधनों को उपयोग में लाने की शक्ति सभी लोगों में एक जैसी होगी तो कोई किसी से अधिक बलवान किस दृष्टि से होगा ? और किसी पर किसी का शासन कैसे हो सकेगा ? हम कहते हैं, हिंसा और शोषण की सम्भावना ही न रहने दो ! शिकार ही न होगा तो शिकारी मारेगा किसे ! जब ऐसे लोग ही न होंगे जो निर्बल हों, जिनका शोषण हो सके तो फिर शासन और शोषण होगा किसका ? देखिये आध्यात्मिक बात आपकी समझ में आसानी से आ जायगी। लोगों को संयम करने का उपदेश आप देते हैं न ? संयम से किस का दमन किया जाता है ? मनुष्य के मन या इन्द्रियों में जो हानिकारक भाव या विचार उठते हैं, अपनी इच्छा से अपने कल्याण के लिए उन्हें रोकने को संयम कहते हैं ? ऐसे ही मेहनत करने वालों का सामाजिक संयम होगा, राज या शासन नहीं होगा.......तानाशाही की तो बात ही जाने दीजिये !"

गांधी टोपीधारी सज्जन ने शंका की—"वाह साहब, पाप और अनाचार क्या पेट के लिए ही होता है ? बल्कि खाते-पीते लोग और अधिक पाप करते हैं।"

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट कर कहा—"यानी आप का मतलब है कि मनुष्य स्वभाव से ही.... ...यानी भगवान ने उसे बनाया ही पापी है ! तो फिर भगवान उसे भले काम की प्रेरणा देगा क्यों ? हम कहते हैं, पाप होता है मजबूरी के कारण ! खाते-पीते लोग गरीबों को दुख पाता देख इस दुख से बचने के लिए अपनी शक्ति बढ़ाने की कोशिश करते हैं इसी से अधिक बलवान बनने की, हुकूमत करने की इच्छा पैदा होती है।"

भावुकता में आ गम्भीर हो दार्शनिक कहने लगे—"मनुष्य की सभ्यता का, उसके मनुष्यत्व का यह पूर्ण विकास है कि मनुष्य-समाज पूर्ण रूप से स्व-तंत्र हो, अपने विवेक के अनुसार चले ! जिस समाज में शासन जितना कठोर हो, वह समाज उतना असभ्य होता है। शासन के बन्धन की जरूरत न रहना ही उसके पूर्ण सभ्य होने का प्रमाण है। ऐसी स्वतंत्रता केवल श्रेणी रहित समाज में मेहनतकशों की व्यवस्था में ही हो सकती है।"

इतिहासज्ञ ने देखा कि दार्शनिक के भावपूर्ण कथन को लोग बेमन से सुन रहे हैं इसलिए उनकी बात उन्होंने खुद कहनी शुरू की—"देखिए साहब !

आपके पास है रामराज्य की पुड़िया जो बीसियों रोगों का इलाज है। आप चाहते हैं रामराज्य हो और उससे मालिक-सेवक का वैमनस्य दूर हो, साम्प्रदायिक झगड़े दूर हों, दरिद्रनारायण की पूजा हो, लोग हिंसा के मुकाबिले अहिंसा का मोर्चा लगावें, तब रामराज्य की सार्थकता सिद्ध हो। कहा है न किसी ने—दर्द भी होता रहे, होती रहे फर्याद भी ; मर्ज भी कायम रहे, जिन्दा रहे बीमार भी। और अपना यह है कि यह सब संकट हटाओ। राज की हो जरूरत न रहे। न राम राज्य की, न रावण राज्य की····!"

इतिहासज्ञ अपनी बात समाप्त भी न कर पाये थे कि समीप ही कांग्रेस के जलसे की भीड़ के बीच, मंच पर खड़े हुए एक तेजस्वी नेता ने इस ओर से आते हुए इस शोर को सुनकर धमकाया—"यह क्या गुल हो रहा है? आप लोगों में जरा डिसिप्लिन नहीं। यह क्या···यह क्या नामाकूलियत है? ····हमारे सामने बड़े-बड़े सवाल पेश हैं और आप लोग आँख मूँद कर छोटी-छोटी बातों में फँसे हुए हैं।······सब लोग चुप हो जाइये! वर्ना हम खुद आकर एक-एक शोर मचाने वाले को उठाकर जलसे के बाहर फेंक देंगे!"

इन तेजस्वी नेता के अहिंसा के बल से शिकार की ताक में खड़े चीते की भाँति काँपते हुए हाथ पैर देख, कामरेडों की बोलती बन्द हो गई।



मनुष्यत्व की हुंकार !

भगवान कभी-कभी अपना आशीर्वाद ऐसे बेमौके बरसा देते हैं कि उससे कल्याण के बजाय संकट ही अधिक होता है। मनुष्य का कौन पाप इस आशीर्वाद रूपी दण्ड का कारण होता है, सो भी वह जान नहीं पाता। ऐसी अनियंत्रित कठोरता करके भी भगवान कृपालु हैं। यदि मनुष्य ऐसा निरंकुश व्यवहार करे, वह कभी मनुष्य से क्षमा की आशा नहीं कर सकता।

वैशाख के अन्त में जब मनुष्य के पसीने और पृथ्वी के गर्भ की उर्वरा शक्ति के संयोग से खलिहानों में सुनहरी फसल के ढेर लगे थे, जब अभी जरूरत थी पच्छिमी हवा की थपकियों की, जो मनुष्य की क्षुधा निवारण करने वाले कंचन के कणों को भूसे के आवरण से अलग करे, खेती में सहयोग देने वाले मनुष्य और पशु अपना-अपना भाग अन्न-कणों और भूसे के रूप में पा सकें—भगवान को खयाल आ गया खस की टट्टियों के पीछे दुबक, खस का इत्र मल, खसखस की ठण्डाई के लिये व्याकुल होने वालों का ! .... बरस पड़े ओलों और गहरी बौछारों में।

दार्शनिक बेचारे की शाम की महफिल गई। भीगी बेंचों और पानी भरी घास पर बैठ बहस करने कौन आता ? इसलिये जब गरमी के कारण अजीर्ण से दुख पाने वाले सज्जन भगवान के बेमौका आशीर्वाद के प्रति धन्यवाद देने के लिए, ताड़ी के चुक्कड़, सोडे और ड्राइजिन के पेग और गज्जक की चिन्ता कर रहे थे; किसान फसल पर गिरी गाज से स्तब्ध हो लगान के लिए घरवाली के खड़ुए रेहन रखने की चिन्ता कर रहे होंगे, दार्शनिक अपने सींख से

रूखे बालों को शीतल हो गई हवा में फहराते हुए निकल पड़े, बंजर के मैदान की विस्तीर्ण शीतलता में लम्बे और मुक्त श्वास लेने के लिए।

प्यासी-धरती की दराजों में जल जाने से उसने उगल दिये करोड़ों ही जीव जन्तु। एक पुरानी बामी की जड़ से अरबों दीमक, अपने शरबती शरीरों में, धाराओं की भाँति उमड़ रहे थे। कुछ ही कदम पर उसी असंख्य संख्या में काले रंग की चींटियों के दल दूसरी बामी से निकल उन पर घोर आक्रमण करने लगे। एक कल्पनातीत, भयंकर संग्राम में असंख्य सफेद और काली चींटियों का संहार होने लगा। सफेद और काली रणमत्त चींटियों के दल शत्रु पक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर भीगी पृथ्वी को ढंकने लगे।

दार्शनिक सोचने लगा—यह सब क्यों? उसी समय मन के संस्कार बोल उठे, शायद सफेद चींटियों को उपनिवेशों की आवश्यकता है तो उन्हें काली चींटियों के भिटे में जमा खाद्य पदार्थों की जरूरत है। काली चींटियाँ प्राण रहते अपनी भूमि और खाद्य भन्डार की ओर किसी की दृष्टि सहन नहीं कर सकतीं।''''कितनी धरती और कितना खाद्य पदार्थ इन दोनों ही प्रकार की चींटियों के लिए सृष्टि में भरा पड़ा है। यदि यह चींटियाँ अपनी शक्ति दूसरी चींटियों के शरीर के टुकड़े करने में व्यय न कर, नई बामी बनाने और खाद्य पदार्थ के नये भन्डार संचय करने में व्यय करें तो यह दोनों ही दल कितने सुखी हो सकते हैं?

चींटियों की इस मूर्खता से उद्विग्न हो, उनकी भलाई के लिए दार्शनिक के मुख से परस्पर प्रेम, सेवाभाव और हृदय परिवर्तन के उपदेश पर व्याख्यान आरम्भ होने को ही था कि समीप ही एक बड़े अहाते के फाटक को सँभाले ईंटों के खंभे पर चिपके, हवा में फरफराते, बड़े इश्तहार में जनता से अपील थी—अपने जानोमाल की रक्षा के लिये, अपने देश की रक्षा के लिए, जंग में इमदाद देने की।

मानो दार्शनिक की आँखों के सामने का दृश्य जादू की छड़ी के स्पर्श से बदल गया! रणांगन में जूझती उन करोड़ों चींटियों के स्थान में उसे दिखाई देने लगे उतने ही नर शरीर। शीतल वायु के स्पर्श से उत्साह पा दार्शनिक की कल्पना और भी प्रखर और गहरी हो उठी। युद्ध में जूझते असंख्य मनुष्यों के साथ ही उसे दिखाई देने लगे—टैंक, तोपों की गाड़ियाँ जो सौ मील पर

गोला फेंककर प्रलय-काण्ड करती हैं; मृत्यु की वर्षा करने वाले हवाई जहाज जिन्हें कोई प्राकृतिक आड़ रोक नहीं सकती। इस मृत्यु को रोक सकता है, मनुष्य का ही प्रयत्न और मृत्यु की शक्ति की सृष्टि भी मनुष्य ही करता है! दार्शनिक के दिमाग में घूमने लगी—मनुष्य के प्रयत्न की असीम शक्ति की बात! अपने आपको तुच्छ समझने वाले मनुष्य के प्रयत्न की शक्ति कितनी असीम है?

उसे याद आने लगी हाल में किसी अखबार में पढ़ी एक खबर""ब्रिटेन का हवाई बेड़ा कई करोड़ मील का चक्कर युद्ध आरम्भ होने के समय से अब तक लगा चुका है। लगभग उतने ही करोड़ मील का चक्कर जर्मन के हवाई बेड़े ने भी जरूर लगाया होगा। और रूस का हवाई बेड़ा; अमेरिका का हवाई बेड़ा; जापान का हवाई बेड़ा; और कितने ही देशों के हवाई बेड़े? इन सब बेड़ों की शक्ति?""""कितने ही सैकड़ों-अरब मील का चक्कर इन हवाई बेड़ों ने मिलकर लगाया होगा? संसार-भर की मनुष्य संख्या है कितनी? यही करीब-करीब एक अरब से कुछ ज्यादा!

दार्शनिक को विस्मय होने लगा—यदि मनुष्य द्वारा बनाये गये इन हवाई जहाजों की शक्ति केवल मनुष्य को मारने के प्रयत्न में और मनुष्य द्वारा की जाने वाली चोट से बचाव करने में खर्च न होती तो संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्भव था कि सैकड़ों मील हवाई जहाज की सैर कर सकता! और दार्शनिक का हाल यह है कि जब पेट भरने की चिन्ता उसे जेठ की दुपहरी में, तपती सड़क पर दो मील दौड़ाती है तब लंगड़ाते इक्के या साइकिल तक की सवारी उसे मुयस्सर नहीं होती? क्या मनुष्य की इस विशाल शक्ति में उसका कोई भाग या अधिकार नहीं?""""मनुष्य की यह विशाल शक्ति अब तक थी कहाँ? अप्रत्यक्ष के किस गर्भ में यह छिपी पड़ी थी? ठीक वैसे ही जैसे यह सैकड़ों-करोड़ों काली सफेद चींटियाँ वर्षा से पूर्व छिपी रहकर भी मौजूद थीं, उसी प्रकार मनुष्य की यह शक्ति भी""""।

मनुष्य की शक्ति और उसका सामार्थ्य क्या केवल हवाई जहाजों की गिनती और उड़ान तक ही सीमित है? मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य को जाना जा सकता है उसके कामों से, रुपये के मूल्य में। एक तोप, टैंक या हवाई जहाज की कीमत क्या होगी? कई लाख रुपये! कितने परिश्रम से

लाख तोपें, टैंक और हवाई जहाज इस युद्ध में बनाये या बिगाड़े जा चुके हैं; उनका हिसाब मुश्किल है। पर कितने अरब रुपया या कहिए कितने मूल्य की मनुष्य की मेहनत-हमारी बहादुर सरकार इस युद्ध में रोजाना खर्च कर रही है, उसका हिसाब अखबार और रेडियो प्रचार से जानने को खूब मिलता है। फिर वही बात कि उतने ही अरब रुपये की मेहनत प्रतिदिन जर्मनी, अमेरिका, रूस, जापान सभी खर्च कर रहे होंगे। सब मिलाकर प्रतिदिन सैंकड़ों अरब रुपयों का खर्च ! लेखा लगाने से संसार के प्रति मनुष्य के हिसाब से लाखों ही रुपये खर्च हो चुके और हो रहे हैं। यदि इतने मूल्य के परीश्रम से दार्शनिक या उस जैसों की अवस्था सुधारने की बात सोची जा सकती ?

यह दूसरी बात है कि दार्शनिक साहब खुश्क रोटी और पानी में उबली दाल खाकर भी ढाबे का बिल प्रति मास सहूलियत से चुका पाते। जूते की सीवन उधड़ जाने पर मरम्मत के लिए और गली के कोने पर पनवाड़ी के यहां से ली गई बीड़ी का उधार चुकता करने में उनके सामने बजट की कठिनाइयां आ जाती हैं। यह दूसरी बात हैं कि हजारों लाखों मनुष्य दार्शनिक के चारों ओर ऐसे हैं जो पेट भर अन्न और लज्जा ढांकने के लिए कपड़े का माकूल चिथड़ा भी नहीं पा सकते। बड़े साहब के कुत्ते के भाग्य से ईर्षा करने वाला दार्शनिक उनके सामने सम्पन्न और सम्मानित बाबू के रूप में अकड़ कर चल सकता है परन्तु संसार के जमा खर्च की वही में उन सब के नाम से भी हजारों ही रुपया उनके हितों और अधिकारों की रक्षा के लिए प्रजातंत्र के नाम नित्य खर्च हो रहा है।

संसार की दृष्टि में चाहे दार्शनिक के व्यक्तित्व का मूल्य कुछ भी न हो ? शायद वह उतना ही नगन्य हो जितनी कि हजारों और लाखों की संख्या में मरने वाली सफेद और काली चींटियां। जो भी हो, दार्शनिक के दिमाग में एक अभिमान और सवाल समाया हुआ है; वह है— मनुष्य होने का दावा !

इस दावे के दुस्साहस से वह समझता है कि संसार और समाज के प्रति उसकी कुछ जिम्मेदारी है और संसार और समाज पर उसका भी कुछ दावा है। कम से कम उतना, जितना कि संसार की मनुष्य गणना मे उसका अंश है। संसार की मनुष्य गणना का क्षुद्र अंश होने के नाते शायद उसका कुछ भी मूल्य न हो। इसीलिए अपने ही जैसे दूसरे मनुष्यों को अपने साथ मिलाकर

वह एक सबल रस्सी बन जाना चाहता है। संसार की व्यवस्था के निरंकुश होते हुए साथी को इस रस्सी से बांधकर वह "मनुष्य" के जीवन को जीने योग्य बनाने की कल्पना करता है। इस रस्सी को वह समाजवाद का नाम देता है। दार्शनिक की कल्पना है—समाज की व्यवस्था का हाथी पुरानी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था की सांकलों के बोसीदा होकर कुड़-मुड़ा जाने से विशृंखल हो गया है। इसलिए वह युद्ध के रूप में उन्मत्त हो, मनुष्य-समाज के सब करे-धरे को अपने विनाश के पैर के नीचे कुचले डाल रहा है!

मनुष्य के प्रयत्न, उसकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुपात को इस युद्ध में होने वाले विनाश के रूप में पहचाना, मनुष्य होने के दावे से दार्शनिक का माथा गर्व से इतना ऊँचा हो जाता है कि उसका शेष शरीर पृथ्वी पर न जाने कहाँ अकिंचन रूप में पड़ा रहा जाता है। परन्तु पृथ्वी से परे कहीं उड़ जाकर तो जीवन चल नहीं सकता! इसलिए जीवन की वास्तविकता उसे फिर पृथ्वी पर खींच लाती है। इस पृथ्वी पर लौट जब उसकी विचार-शक्ति देखती है—मनुष्य का प्रयत्न और शक्ति उसके अपने विनाश में ही लगी है तो मनुष्य होने के दावे के नाते वह लज्जा से पृथ्वी में गड़ जाता है।

मनुष्य अपनी शक्ति और सामर्थ्य का उपयोग ठीक से नहीं कर पाता और अपना नाश करने लगा है। मनुष्य की यह शक्ति और सामर्थ्य उस पर चोट न कर उसके उपयोग में आये; मनुष्य के लिए मृत्यु के साधन तैयार न कर, जीवन की सहूलियतें पेश करे, इस उद्देश्य से दार्शनिक मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य की व्यवस्था इस प्रकार करना चाहता है कि मनुष्य-समाज के भिन्न-भिन्न अंश 'पूंजी' के पंजों से एक दूसरे को नोचना और चूसना छोड़ सम्पूर्ण समाज को सम्पन्न बना सकने के ढंग पर आ जायें। इसी को वह समाजवाद कहता है।

इस सुख-कल्पना में उसे दीखने लगता है—संसार भर का मनुष्य-समाज श्रेणी, नस्ल, जाति और देशों के रूप में अपने को बांट कर, एक दूसरे का नाश और शोषण द्वारा जीवन के प्रयत्नों को छोड़, परस्पर सहयोग से जीवन के तरीके पर चलने लगेगा। तब मनुष्य का परीश्रम विनाशक तोपें, टैंक, जंगी जहाज और गोला बारूद बना आत्म-हत्या करने के बजाय अपनी भूख

मिटाने, शरीर ढाँकने और दूसरी आवश्यक चीजें पैदा करने के काम में लग जायगा। तब एक-दूसरे को शत्रु समझ परस्पर भयभीत और आशंकित रहने वाले सब देशों में भरे पड़े सिपाही नामधारी मनुष्य, पशुओं की जरूरत न रहेगी। स्वयं अपनी व्यवस्था के कारण सदा भयभीत रहने वाला मनुष्य-समाज अपनी रक्षा कर पाने के प्रयोजन से इन्हें लड़ाकू मेढ़ों की तरह पालता है। समाज का अंग-भंग करने के अलावा कोई दूसरा उपयोगी काम यह लोग नहीं करते। जब जबरदस्ती हिंसक बनाकर रखे जाने वाले यह जीव भी समाज के उपयोगी कामों में जुट जायंगे, तब मनुष्य-समाज कैसा सुखी हो जायगा? तब दार्शनिक को, शक्ति और सामर्थ्य होते हुए भी, उपयोगी काम कर सकने का अवसर न मिलने के कारण बेकार और बेरोजगार न रहना पड़ेगा। उसे दाल-रोटी जूते और कुर्ते के लिए तरसना नहीं पड़ेगा। तब व्यक्ति या दल राज नहीं करेंगे, राज करेगा समाज। दार्शनिक समाजवाद के इस ख्याल में मस्त होकर बेखुद सा हो गया। उसी समय अपने पांव में दो एक चींटियों के दांतों की अजमाइश करने से उसका ध्यान वास्तविकता की ओर लौट आया दिखाई देने लगा – एक बड़ा युद्ध, विनाशक युद्ध, जो मनुष्य-समाज को कोल्हू में डाली गयी ईख की तरह निचोड़े ले रहा है? ·· क्यों?···· ···मनुष्य-समाज की व्यवस्था कोस ही राहपर लाने के लिये? शायद इस विश्वास से कि मनुष्य की जीवन शक्ति और उत्पादन शक्ति आवश्यकता से अधिक बढ़ गई है।

मनुष्य-समाज के लिए सही व्यवस्था का सवाल ही तो सब से टेढ़ा प्रश्न है। मनुष्य-समाज के लिए एक सही व्यवस्था की कल्पना दार्शनिक भी करता है। दार्शनिक अपनी अनेक बेढंगी कल्पनाओं के लिए मौलिकता का दावा कर सकता है परन्तु समाज की इस नई व्यवस्था की कल्पना के लिए ऐसा दावा वह नहीं कर सकता। प्रकृति और समाज को छोड़ कल्पना या प्रेरणा लेने का कोई साधन उसके पास नहीं। उसकी इस कल्पना का आधार है – समाज का युग-युग का अनुभव और जीवित रहने की चेष्टा। जीवन की प्रेरणा ही मनुष्य-समाज के शरीर को इस कल्पना की ओर अग्रसर कर रही है। समाज का निस्सत्व होता शरीर इस कल्पना द्वारा जीवन निर्वाह के स्रोतों को विनाश से बचाना चाहता है।

अपनी व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए समाज का यह प्रयत्न पुराना

व्यवस्था की मालिक शक्तियों को पसन्द नहीं.......। यह शक्तियाँ अपनी व्यवस्था के हाथी को अपने मन से चलाने के लिए जनता के खेत उजाड़ पालती आई हैं। वे पुराने ही ढंग पर डटी रहना चाहती हैं। नई व्यवस्था में अपने पुराने अधिकार हाथ से निकलते देख, इन्हें अपना अन्त दिखाई देने लगता है। अपने अधिकारमय जीवन की रक्षा में ही वे समाज के जीवन की भी रक्षा समझते हैं।

अधिकारी श्रेणी की प्रभुता का वह स्वर्ण-काल ही उन्हें शान्ति व्यवस्था, न्याय, धर्म और रामराज्य का आदर्श जान पड़ता है। अधिकार और अपनी विशेषता को खोकर आम जनता में— उस आम जनता में जो केवल उपयोग में आने वाले पशुओं के समान है—मिल जाना उन्हें मनुष्य-समाज के पशु और बरबर बन जाने के समान पड़ता है। मनुष्यत्व का अर्थ उनकी दृष्टि में है— उनकी अपनी श्रेणी का राज! अपनी श्रेणी से इतर सब को वे पशु ही समझते आये हैं। उन्हें शायद यह भूल जाता है कि उपयोग की वस्तु न बनी रह कर उपयोग करने की साध जिस जनता में आ गई, वह पशु नहीं रही, मनुष्य बन गई! यह नया मनुष्यत्व विशाल और विस्तीर्ण आधार पर उठने वाले वृक्ष की भाँति बहुत ऊँचा जायगा।

दार्शनिक का विचार है—मनुष्य की शक्ति के विकास के साथ ही उसके हाथ-पाँव लंबे हो गये हैं। पुरानी संकीर्ण सीमाओं में रह कर उसका निर्वाह नहीं। मनुष्य के हाथ-पैर छोटे होने की अवस्था में जो उसका धर्म और आदर्श था, वह धर्म और आदर्श अब उसका नहीं रह सकता। जब मनुष्यत्व की पहुंच सीमित थी, परिवार उसका आदर्श था। दूसरे परिवार को वह शत्रु समझता था और पपने परिवार के लिए मर मिटना उसका धर्म था। मनुष्यत्व की सीमा बढ़ने पर, समाज के शरीर का आयतन बढ़ने पर मनुष्य अपने परिवार को देश पर बलिदान कर देता है। और फिर मनुष्य की पहुँच और शक्ति के अनुपात में उसके देश की सीमा भी बढ़ती जाती है। गांव से जिले, जिले से प्रान्त और प्रान्त से देश की ओर। तब देश को लाँघ कर वह पृथ्वी और संसार भर में फैल जाती है और संसार उसका परिवार हो जाता है। आज मनुष्य-समाज के जीवन का तरीका देशों की सीमायें लाँघ पृथ्वी और संसार भर में फैल गया है।

आज कोई भी देश दूसरे देशों से अलग रहकर अकेला जीवित नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में देशभक्ति के भाव से दूसरे देशों से झगड़ा, आत्म हत्या के अतिरिक्त और क्या है? दार्शनिक का विचार है, सीमित राष्ट्रीयता और देशभक्ति मनुष्य की पूंजीवाद की आयु का आदर्श था और उस समय उसका पराक्रम था—साम्राज्यवाद!—अपने देश और राष्ट्र को बलवान बना कर, दूसरे देशों और राष्ट्रों को शत्रु समझ उन्हें शिकार बनाना।

आज मनुष्य-समाज बालिग हो गया है और उसका आदर्श है:—सम्पूर्ण संसार एक समाज है!

बालिग होकर मनुष्य-समाज ने आज पहली बार अपने आपको 'मनुष्य' के रूप में पहचाना है। अब तक वह अपने आपको परिवार, जाति, राष्ट्र, देश के मनुष्यों और साम्राज्य के संकीर्ण रूपों में ही समझता आया है। अब उसने कहना सीखा है—"संसार के मनुष्य!"

मनुष्यत्व का आधार है, उसके जीवन का सामर्थ्य—उसका परिश्रम? इसलिए बालिग और सचेत मनुष्य ने अपने आपको पहचान कर पहली बेर हुंकार की है:—"संसार के परिश्रम करने वालो एक हो जाओ?"

संसार का कौन मनुष्य है जो मनुष्य की इस भावना का विरोध कर सकता है? कौन है जो परिश्रम किए बिना खाकर जीना चाहता है......? जो मनुष्य नहीं बनना चाहता, उसका इलाज?

पुरानी व्यवस्था के बल से दूसरों के पेट पर हाथी नचाने के वे शौकीन, जो साधारण मनुष्य बन जाने के अपमान से मर मिटना बेहतर समझते हैं, जो शेष संसार को अपना शिकार और शत्रु समझ, अपने राष्ट्र के साम्राज्य के रूप में अपनी शक्ति का नशा कायम रखने के लिए, संसार को रक्त का स्नान करा, अपने लिए भोग्य बनाये रखना चाहते हैं। इस नयी व्यवस्था के विरुद्ध जी जान से लड़ने के लिए तैयार है। अपने देश और राष्ट्र को, संसार की प्रभुता और सम्राट बनने की कल्पना का मद पिला, सम्पूर्ण संसार के सीने में अपनी लौहमय एड़ी गड़ा, अपने पैर के नीचे सम्पूर्ण संसार को कुचला हुआ और सिसकता देखने की बर्बर इच्छा पैदा कर जो लोग अपने निरंकुश शासन का अधिकार कायम रखना चाहते हैं, उनकी दृष्टि में मनुष्य और

मनुष्यता का मूल्य कुछ भी नहीं। वे कहते हैं—मनुष्य के प्राण बचाने वाली रोटी से उसके प्राण लेने वाली बन्दूक की गोली अधिक अच्छी है......!*

संसार भर को अपनी लौहमय एड़ी के नीचे दवा देने का स्वप्न, संसार भर के मनुष्यों के विरुद्ध, मनुष्यत्व को कुचल डालने की ललकार है। दलितों और पीड़ितों के हृदय में उगते मनुष्यत्व का अधिकार पाने के अरमान को कुचल डालने का गरूर है......निर्बलों के भविष्य का अन्त है!

अपने राष्ट्र के साम्राज्य के रूप में अपने दल की निरंकुश तानाशाही क़ायम करने के लिये संसार भर की मनुष्यता को कुचल डालने का यह गुरूर दूसरों की राष्ट्रीयता से टक्कर लिये विना कैसे रह सकता था? और सबसे बढ़कर, मनुष्य मात्र के लिये समान अधिकार का दावा करने वाले मनुष्य को, राष्ट्रीयता की संकीर्णता से निकालकर केवल 'मनुष्य' बनाने का यत्न करने वाले समाजवाद को वह अपना बीजनाश करने वाला शत्रु समझे विना कैसे रह सकता था?

प्राचीन व्यवस्था की नींव पर, प्राचीन नैतिकता के वल पर, पुराने खुदा की शह से स्वामी बने रह कर, शोषण का अपना अधिकार बनाये रखने की चेष्टा करने वाले चाहे वे तोप, तलवार का जोर दिखायें, चाहे वे प्रेम, सेवा, अहिंसा का ढोंग रचें, वे जनता का स्वयम अपना राजा बनता फूटी आंखों नहीं देख सकते। सामाजिकता और समाजवाद उन्हें सदा ही अन्याय और हिंसा जान पड़ेगी।

अपने को मनुष्य समझने का दावा करने वाला, मनुष्यता की हुंकार—"संसार के मेहनत करने वालो (मनुष्यो) एक हो जाओ"—से अभिमान करने वाला दार्शनिक, मनुष्यता पर होने वाले इस भैरव आक्रमण के प्रति उदासीन कैसे रह सकता है।

वह अनुभव करता है—मनुष्य बन सकने की इच्छा करने वाले पीड़न, शोषण और दमन का विरोध करने वाले चाहे जहां कहीं हों; संसार की मनुष्यता में अपनी रक्षा समझने वाले चाहे जिस जगह भी हों; मनुष्यत्व पर इस बलात्कार और कत्ल को सहन नहीं कर सकते। जीवित रहने का अधिकार,

---

*Guns are better than butter—Guebles.

मनुष्यत्व का आदर्श और महत्वाकांक्षा सजग और सक्रिय हो जाने के लिए उन्हें ललकार रही है।

पैर में काटने वाली चींटी से अधिक व्याकुल कर दिया दार्शनिक को मनुष्यत्व पर आ रही चोट की पीड़ा ने।

अपने साधनहीन दोनों हाथ मलकर वह सोचने लगा—"साधनों के बिना भी मनुष्य 'मनुष्य' है ?"

अपने असामर्थ्य की ग्लानि में वह केवल यह निश्चय कर रह गया—"प्राण जाने पर भी मनुष्यत्व के आदर्श को वह न छोड़ सकेगा.........व्यक्ति के मिट जाने पर भी मनुष्यत्व बना रहेगा,...मनुष्यत्व विजयी होकर पृथ्वी भर पर फैलेगा !.......चिरंजीवी हो मनुष्य का 'मनुष्यत्व' !.......मनुष्य की सामाजिक भावना !"

